पाँच प्राण - पाँच देव

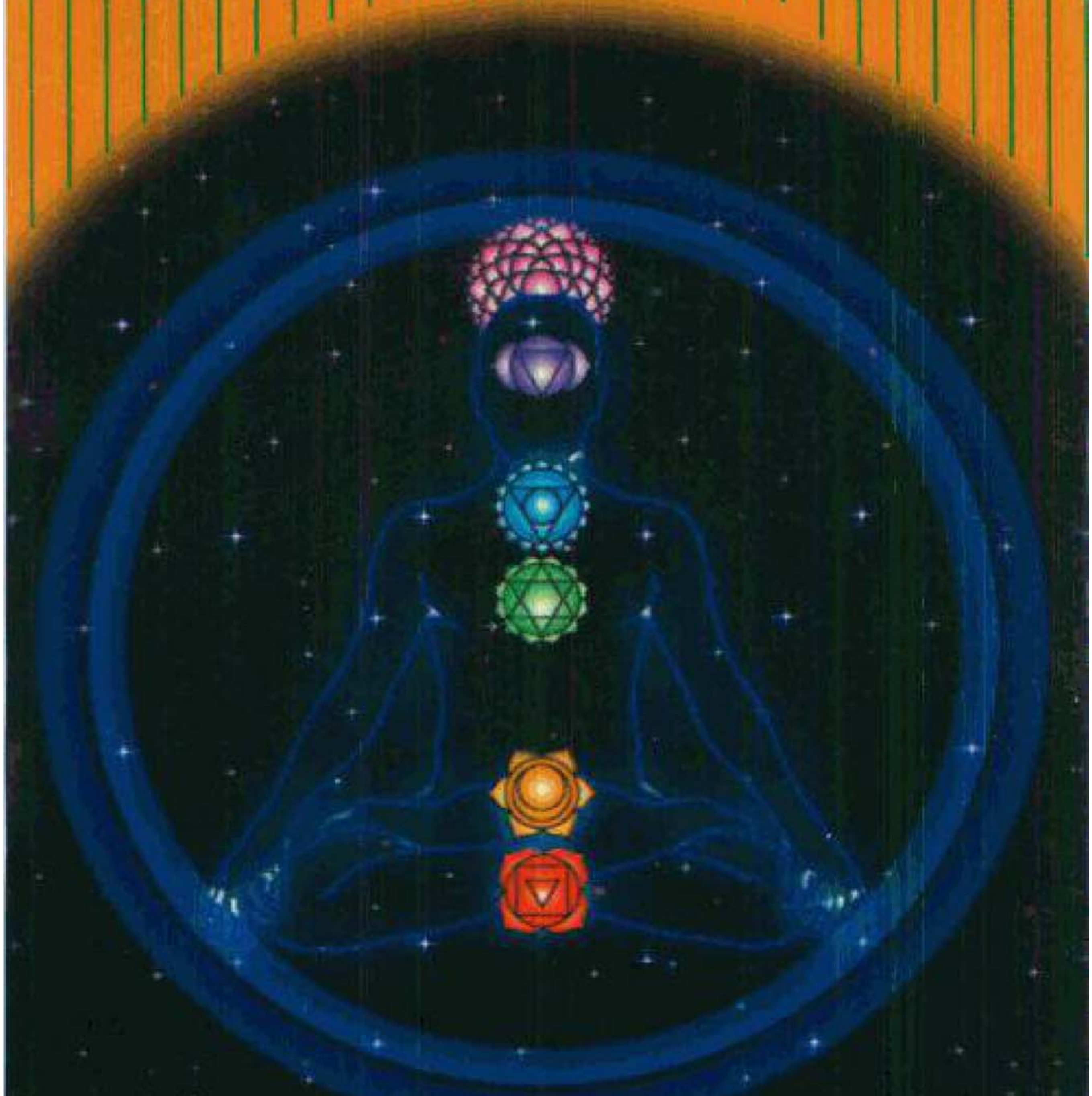

-श्रीराम शर्मा आचार्य

पाँच प्राण-पाँच देव

✳

लेखक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

✳

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना प्रेस

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फेक्स नं०- २५३०२००

✳

२००८ मूल्य : १४) रुपया

विषय-सूची

१. क्या हम उतने ही हैं—जितना स्थूल शरीर	३
२. बायोलॉजिकल प्लाज्मा बॉडी	१५
३. स्थूल ही नहीं, सूक्ष्म का भी ध्यान रखें	२६
४. प्राण शक्ति के प्रत्यक्ष प्रमाण	३७
५. पाँच प्राण—पाँच शक्ति धाराएँ	५७
६. सूक्ष्म शरीर की अनुभूति—प्राणायाम से	७७
७. अंतरंग में उतरें, आत्मबल प्राप्त करें	१०१

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष—
पर्जन्यो मघवानेष वायुः।
एष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं चयत्।।

—प्रश्नोपनिषद् २/५

यह प्राण ही शरीर में अग्नि रूप धारण करके तपता है; यह सूर्य, मेघ, इंद्र, वायु, पृथ्वी तथा भूत समुदाय है; सत्, असत् तथा अमृत स्वरूप ब्रह्म भी यही है।

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

क्या हम उतने ही हैं—जितना स्थूल शरीर

*

प्रथम महायुद्ध के समय 'डॉन और बॉब' नामक दो अमेरिकी सैनिक युद्ध के एक मोर्चे पर एक साथ ही घायल हो गये। वे दोनों गहरे मित्र भी थे। 'डॉन' तो तुरंत मर गया किंतु 'बॉब' उपचार से ठीक हो गया। पर स्वस्थ होने पर 'बॉब' के स्वभाव में भारी परिवर्तन देखा गया। वह अपने मित्र 'डॉन' जैसा व्यवहार करने लगा। स्वयं को डॉन कहता। युद्ध समाप्त होने पर वह घर के लिए रवाना हुआ किंतु अपने घर न जाकर, 'डॉन' के घर जा पहुँचा। वहाँ डॉन के माता-पिता से मिलकर उतना ही प्रसन्न हुआ जैसा 'डॉन' होता था। आचरण और व्यवहार में 'डॉन' से पूर्ण समानता होने पर भी 'बॉब' का शरीर तो पूर्ववत् ही था। 'डॉन' के माता-पिता' ने 'बॉब' को अपना पुत्र मानने से इनकार कर दिया। इस पर 'बॉब रूपी 'डॉन' को विशेष दु:ख हुआ। उसने डॉन के माता-पिता को अतीत से संबंधित ऐसी-ऐसी प्रामाणिक घटनाएँ बतायीं, जो उन्हीं से संबंधित थीं। उस पर उसको विश्वास हो गया कि रूप की भिन्नता होते हुए भी उसके सारे क्रिया-कलाप 'डॉन' जैसे हैं तथा डॉन की आत्मा 'बॉब' के शरीर में प्रविष्ट हो गई है। यह घटना विज्ञान के लिए एक चुनौती जैसी है।

स्पेन में भी एक आश्चर्यजनक घटना ऐसी ही सामने आयी। दो लड़कियाँ एक बस से जा रही थीं। इनमें एक का नाम 'हाला' तथा दूसरी का 'मितगोल' था। बस रास्ते में ही दुर्घटनाग्रस्त हो गई। 'मिर्तगोल' दुर्घटना में पिसकर मर गई। 'हाला' को चोट तो नहीं लगी किंतु भय के कारण बेहोश हो गई। कुछ समय बाद उसे होश आया। दुर्घटना की सूचना दोनों लड़कियों के अभिभावकों को मिली। अपनी बच्चियों को देखने दोनों दुर्घटना-स्थल पर पहुँचे। 'हाला' के पिता उसकी ओर बढ़े तथा उसका नाम लेकर पुकारा। पर आश्चर्य वह बोल पड़ी "मैं हाला नहीं मितगोल हूँ।" यह कहकर

'वह' मितगोल के पिता की ओर बढ़ी। अभिभावकों ने उसे स्मृति भ्रम समझकर, उसे दर्पण दिखाया जिससे दर्पण देखकर भ्रम दूर कर सके। परंतु दर्पण देखकर वह बोली "मितगोल (हमारा) रूप कैसे बदल गया"। 'हाला' के पिता किसान थे। वह अधिक पढ़ भी नहीं पायी थी। मितगोल के पिता 'प्राचार्य' थे। मितगोल कॉलेज में पढ़ती थी तथा विभिन्न विषयों की जानकार थी।

हाला के पिता समझा-बुझाकर लड़की को अपने साथ ले गये। वह उस विद्यालय में पढ़ने गई, जहाँ पहले हाला पढ़ती थी। किंतु वहाँ उसके व्यवहार में पूरी तरह परिवर्तन देखा गया। एक दिन वह उस विद्यालय में जा पहुँची, जहाँ मितगोल पढ़ती थी। वहाँ छात्रों को संबोधित करते हुए, स्पिनोजा के तत्त्वज्ञान पर भाषण दिया। ऐसे अनेकों प्रमाणों से 'प्राचार्य' महोदय को यह विश्वास हो चला कि 'हाला' का शरीर होते हुए भी उसमें 'मितगोल' की आत्मा है। जो भी प्रयोग परीक्षण हुए, उनसे यह एक ही बात सिद्ध हुई।

विश्व-विख्यात चित्रकार 'गोया' की आत्मा अमेरिका की एक विधवा हैनरोट के भीतर प्रविष्ट हो गई। यह घटना अमेरिका में प्रसिद्ध है। नये शरीर में 'गोया' ने 'ग्वालन' नामक एक सुंदर कलाकृति का निर्माण किया। विधवा 'हैनरोट' ने अपने जीवन काल में कभी चित्र नहीं बनाया था। अमेरिकी विशेषज्ञों को विधवा के व्यवहार में गोया की आत्मा झाँकती दिखायी दी।

घटना ७ नवंबर, १६१८ की है, तब पहला विश्वयुद्ध चल रहा था। एक फ्रांसीसी लड़का टैड, जिसका पिता फ्रांस के मोर्चे पर लड़ रहा था, खेलते-खेलते एक दम चिल्लाया—मेरे पिता का दम घुट रहा है। वे एक तंग कोठरी में बंद हो गये हैं और उन्हें कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा है। घर के लोग कुछ भी नहीं समझ पाए। टैड इतना कहकर बेहोश हो गया था। कुछ देर बेहोश रहने के बाद उसे होश आया और वह बोला—अब वे ठीक हो जायेंगे। घर के लोगों ने टैड के बेहोश होने से पूर्व कहे गये शब्दों और बाद में होश आने पर कहे शब्दों से इतना ही अंदाज लगाया कि टैड ने

अपने पिता के संबंध में कोई दुःस्वप्न देखा होगा। बात जहाँ की तहाँ समाप्त हो गई।

प्रथम विश्वयुद्ध, जब समाप्त हुआ और टैड के पिता घर लौटे तो स्वजनों को उस दिन की घटना याद आ गयी, जब टैड के पिता ने बताया कि ७ नवंबर को मैं मरते-मरते बचा। पूछा गया कि क्या बात हुई थी, तो उन्होंने बताया कि मैं उस दिन एक गैस चेंबर में फँस गया था, जिसमें मेरा दम घुटने लगा था। मुझे दिखायी देना भी बंद हो गया था। तभी मैंने देखा कि टैड जैसा एक लड़का उस युद्ध की विभीषिका में न जाने कहाँ से आ पहुँचा और उसने चेंबर का मुँह खोलकर, मुझे हाथ पकड़कर बाहर खींचा। तभी मेरी यूनिट के सैनिकों की दृष्टि मुझ पर पड़ी और उन्होंने मुझे अस्पताल पहुँचाया। यह विवरण सुनकर ही घर वालों को उस दिन टैड के चीखने, बेहोश होने तथा होश में आने पर आश्वस्त ढंग से बात करने की घटना याद आयी।

इटली के एक पादरी अलफोन्सेस लिगाडरी के साथ २१ सितंबर, १६७४ को ऐसी ही घटना घटी। उस दिन वे ऐसी गहरी नींद में सोए कि जगाने की बहुत कोशिशें करने के बाद भी न जगाए जा सके। यह भ्रम हुआ कि कहीं वे मर तो नहीं गये हैं। इस भ्रम की परीक्षा के लिए, उनकी जाँच की गई तो पता चला कि वे पूरी तरह जीवित हैं। कई घंटों तक वे इसी स्थिति में रहे। उन्हें जब होश आया तो देखा कि आसपास लगभग सभी साथी सहयोगी खड़े हुए हैं। उन्होंने अपने साथियों से कहा—"मैं आपको एक बहुत ही दुःखद समाचार सुना रहा हूँ कि हमारे पूजनीय पोप का अभी-अभी देहांत हो गया है।" साथियों ने कहा—"आप तो कई घंटों से अचेत हैं, आपको कैसे यह मालूम हुआ ?"

लिगाडरी ने कहा—"मैं इस देह को छोड़कर रोम गया हुआ था और अभी-अभी वहाँ से ही लौटा हूँ।" उनके साथियों ने समझा कि वे कोई सपना देखकर उठे हैं और सपने में ही उन्होंने पोप की मृत्यु देखी होगी। चार दिन बाद ही यह खबर लगी कि पोप का

देहांत हो गया है और वह उसी समय हुआ, जब कि लिगाडरी अचेत थे तो उनके मित्र साथी चकित रह गये।

एक स्थान पर रहते हुए भी मनुष्य अपनी आत्मा की शक्ति द्वारा दूरवर्ती क्षेत्रों में संदेश पहुँचा सकता है। उपरोक्त घटनाओं में जाने-अनजाने सूक्ष्म शरीर ही सक्रिय रहा है। यदि सूक्ष्म शरीर की शक्ति को जागृत कर लिया जाए, तो उससे जब चाहें तब मन चाहे करतब किए जा सकते हैं। १६२६ में अल्जीरिया में कैप्टन दुबो के साथ ऐसी ही घटना घटी, जिससे सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व और उसकी शक्तिमत्ता का प्रमाण मिलता है। कैप्टन दुबो जब अल्जीरिया के एक छोटे-से गाँव से कुछ रोगियों को देखकर लौट रहे थे, गाँव का मुखिया अब्दुल उन्हें धन्यवाद देने के लिए उनके साथ-साथ आया, बातों ही बातों में अब्दुल ने कैप्टन से सूक्ष्म शरीर के अनेक चमत्कारों का उल्लेख कर दिया। दुबो ने अब्दुल की बातों में कोई रुचि नहीं दिखाई और उल्टे इसे गप्पबाजी कहा। इस पर अब्दुल ने कहा कि मैं इसे प्रमाणित कर सकता हूँ। कैप्टन ने जब उसकी यह बात सुनकर भी अविश्वास से सिर हिलाया, तो अब्दुल कुछ देर के लिए ध्यानस्थ हुआ और फिर आँखें खोलकर बोला—आप अपने पीछे मुड़कर देखिए। जैसे ही उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो उन्होंने दीवार पर एक ऐसी कलाकृति टँगी पाई, जो उन्हें बहुत प्रिय थी और इस समय वहाँ से हजारों मील दूर पेरिस में उनके घर पर थी।

उसी दिन कैप्टन दुबो के पिता पियरे ने पेरिस की पुलिस में रिपोर्ट लिखाई कि उनके घर से १० लाख रुपये मूल्य की अद्वितीय कलाकृति चोरी चली गयी। पुलिस कमिश्नर पियरे के अच्छे मित्र थे, उन्होंने शिकायत मिलते ही अपने सर्वश्रेष्ठ गुप्तचर कलाकृति की खोज में लगा दिये। कई दिन तक लगातार खोज चली, पर कलाकृति की खोज न की जा सकी। जिस कमरे में कलाकृति टँगी थी, उसमें किसी के जबरन प्रवेश करने या उँगलियों के निशान नहीं मिले थे। पियरे ने इस कलाकृति की चोरी की खबर अपने पुत्र

को भी दी। तब सारी बात जानकर कैप्टन दुबो, पुलिस कमिश्नर और अन्य अधिकारियों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ।

इन सारी घटनाओं का विश्लेषण किया जाए, तो उससे प्रेरणाएँ, दिशाएँ तथा मंतव्य अनेक प्रकार से निकाले जा सकते हैं, किंतु इन सबका निष्कर्ष एक ही निकलता है, वह है स्थूल शरीर से परे मनुष्य का एक और भिन्न सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व। स्थूल शरीर की इकाई है—"प्रोटोप्लाज्म"। इस सूक्ष्म शरीर का इकाई क्या है ? यह अन्वेषण का विषय है, किंतु यह तथ्य निर्विवाद है कि शरीर में एक और शरीर—जिसे भारतीय तत्व दर्शन, सूक्ष्म शरीर कहता है, का निवास है। यह कहीं अधिक समर्थ और चमत्कारी है। सच तो यह है कि स्थूल शरीर के सारे क्रिया-कलाप उसी के द्वारा संचालित होते हैं, उसके दुकान बंद करते ही स्थूल शरीर की तिजारत हमेशा के लिए बंद हो जाती है।

यह सूक्ष्म शरीर जिस प्राण स्फुलिंग के समुच्चय से बना है, वह अपने आप में अनंत शक्तियों के स्रोत समाहित किये हुए हैं इसलिए शरीर के पाँच प्राणों को पाँच देवता कहते हैं। एक देवता की सहायता मनुष्य को अगर अमर बना देती है तो यदि कोई इन पंचदेवों को सिद्ध कर ले तो वह कितना समर्थ हो सकता है ? उसे प्रस्तुत घटनाओं से अनुभव भर किया जा सकता है। उसका पूरी तरह अनुमान लगा सकना कठिन है।

○ सूक्ष्म शरीर का शक्तिशाली व्यक्तित्व

आँखों देखी को ही प्रमाण मानने वालों के समक्ष भी आये दिन ऐसी घटनाएँ घटती रहती हैं, जो यह स्पष्ट कर देती हैं कि सामान्यतः जितना विदित है, उससे अनेक गुनी क्षमताएँ मनुष्य के भीतर सन्निहित हैं और ये सभी क्षमताएँ उसमें एक व्यापक विराट् चैतन्य सत्ता के अंश होने के कारण ही हैं। जब भी कोई व्यक्ति उस अदृश्य सत्ता से गहराई में जुड़ जाता है, उसकी वे

विलक्षणताएँ उभर पड़ती हैं, जिनकी व्याख्या अब तक ज्ञात भौतिक-विज्ञान के नियमों के सहारे नहीं हो सकतीं।

अपने सामान्य चेतन मस्तिष्क के संकल्प-बल से मनुष्य स्थूल शरीर को तरह-तरह की गतिविधियों में नियोजित करता है। चेतना की गहराई से संचालित सूक्ष्म शरीर की गतिविधियों का क्षेत्र इस इंद्रिय जगत् के आगे का सूक्ष्म-जगत् है। सूक्ष्म शरीर द्वारा इस सूक्ष्म जगत् में हलचलें, क्रियाएँ की जा सकती हैं। जिस प्रकार सूक्ष्म जगत् की शक्ति स्थूल जगत् से कहीं अधिक है, उसी प्रकार सूक्ष्म-शरीर की सामर्थ्य स्थूल शरीर से बहुत अधिक है। वह मानव-मन की तरह तीव्रगति वाला तो है ही, अज्ञात क्षेत्रों का परिचय प्राप्त करने और अनजानी वस्तुओं की भी जानकारी पाने में समर्थ है। अविज्ञात सूक्ष्म जगत् से जुड़े सूक्ष्म शरीर की क्षमताएँ अभी पूरी तरह अविज्ञात ही हैं। किंतु उनके जो स्थूल प्रमाण मिले हैं, वे भी कम विलक्षण नहीं हैं। उनसे मनुष्य के भीतर सन्निहित प्रचंड सामर्थ्य स्रोत का आभास तो मिलता ही है।

आयरलैंड की एक घटना है। वहाँ बटलर-दंपत्ति रहते थे। श्रीमती बटलर प्रायः रात्रि में स्वप्न में एक सुंदर इमारत देखती थीं, जो चारों ओर के उद्यानों के बीच होती। सपने में वे उस मकान के भीतर घूमतीं। वह स्वप्न उन्हें इतनी बार आया कि वे उस मकान के बाहरी ढाँचे से ही नहीं, उसके कमरों की भीतरी बनावट से भी परिचित हो गईं। घर वालों से वे इन स्वप्नों की एकसूत्रता की चर्चा भी करतीं। पर वे लोग इसे एक विनोद-प्रसंग बनाने के सिवाय और क्या सोचते ?

हुआ यह कि एक बार पति-पत्नी को लंदन जाना पड़ा। वहाँ आवास-योग्य मकान की खोज शुरू हुई। एक दिन कार में शहर घूमते समय सहसा श्रीमती बटलर एक मकान को देखकर चौंक उठीं। पति से बोलीं—"यही वह मकान है जो मुझे अक्सर स्वप्नों में दिखता था।"

पति भी उत्सुक हो उठे। कार रोकी। मकान की बावत पूछताछ की, पता चला वह बिक सकता है, खाली पड़ा है। श्रीमती बटलर ने सोचा "यही मकान मिल जाए तो अच्छा हो। खरीद लिया जाए।"

बटलर-दंपत्ति एजेंट के पास गए और उस मकान की जानकारी दी। एजेंट ने समझाया—"आप लोग इस चक्कर में न पड़ें। मैं और अच्छे मकानों के विवरण देता हूँ। देख लें। उनमें जो पसंद आए, ले लें। यह मकान न लें। यह भुतहा मकान है।"

पर श्रीमती बटलर के मन में तो उस मकान के प्रति आत्मीयता घर कर गई थी। उन्होंने उसे ही लेने का आग्रह किया। अतः एजेंट उन्हें लेकर मकान-मालिक के पास गया।

पर मकान मालिक ने अपने फाटक के भीतर जैसे ही श्रीमती बटलर को देखा, कुर्सी से उठकर भाग खड़े हुए। "भूत, भूत" चिल्लाते वे भीतर घुस गए।

एजेंट उसी शहर का होने से उनसे परिचित था। अतः उनके पास गया। भीतर वे महाशय भय से काँप रहे थे। घर वाले भी तब तक जमा हो गए थे। वे कुछ समझ नहीं पा रहे थे। एजेंट ने मकान-मालिक को समझाया कि ये लोग मकान खरीदने आए हैं। अमुक विभाग में कार्य करते हैं। कोई भूत नहीं हैं। तब वे सज्जन आए। उन्होंने बताया कि—"वह मकान हमें छोड़कर यहाँ आना पड़ा। यों, हमें वही अधिक पसंद था। इस वाले मकान को तो हमने किराये में उठा रखा था, पर वहाँ रात को एक औरत जब-तब आ धमकती और घूमने लगती है। घर वाले तो रात की उस आहट को सुनते ही डर के मारे मुँह ढककर दुबके रहते। उन्हें बस यह आभास दूर से दो-एक बार हो गया था कि कोई स्त्री-छाया वहाँ टहलने आई है। मैंने उसे देखने की कोशिश की। बार-बार देखने के कारण मैं उसे भलीभाँति पहचान गया। वह आप ही थीं। मैंने पहली बार तो आप से बातचीत करने की कोशिश की, क्योंकि आप में भयावहता जैसी कोई बात नहीं थी। मैं चकित जरूर हुआ था कि

रात में आप अंदर आई कैसे ? पर सोचा पूछूँ, टोकूँ लेकिन जब आप पर मेरी बात का कोई असर ही नहीं हुआ, मानो आप सुन ही नहीं रही हैं, तब मैं घबराया। आगे, जब आप बार-बार आ धमकने लगीं, तो हमें वहाँ खतरा महसूस हुआ। इसके पहले कि हमें भूत यानी आप कोई हानि पहुँचाएँ, हमने वह मकान छोड़ देना ही ठीक समझा।"

सुनकर श्रीमती बटलर चकित हुईं। उन्होंने बताया कि मैं स्वप्न में जरूर यह सब देखती थी, पर इसका अर्थ नहीं समझ पाती थी। मकान-मालिक का भूत-भय तो मिट गया, पर एक नया ही रहस्य सामने आया—उसने सोचा कि इस मकान से इस महिला का कोई रहस्यमय संबंध है। अतः उसने उन्हें काफी सस्ते में वह बेच दिया।

ऐसी ही घटना १८६३ में दो अमेरिकी नागरिकों के साथ घटी। उनमें से एक का नाम था, टेट, दूसरे का विल्मोट। दोनों समुद्री जहाज से साथ-साथ यात्रा कर रहे थे। जब उनका जहाज रात में अंधमहासागर से गुजर रहा था, उस समय तेज तूफान आया। जहाज हिचकोले खाने लगा। विल्मोट उस समय सो रहा था, टेट बैठा था।

सहसा टेट आश्चर्य से भर उठा। दरवाजा बंद था। पर एक महिला गाउन पहने दरवाजे पर खड़ी थी। टेट अचकचा गया, किंतु महिला के चेहरे पर शालीनता थी और वह संकोच से भरी थी। अतः वह डरा नहीं, न चीखा। चुपचाप देखता रहा।

वह गाउनधारिणी महिला सोते हुए विल्मोट की ओर धीरे-धीरे बढ़ी, मानो टेट की उपस्थिति से हिचक रही हो। उसने विल्मोट का माथा सहलाया, कुछ बोली, जो टेट नहीं सुन सका। फिर उसी प्रकार लौट पड़ी। दरवाजे पर पहुँचकर गुम हो गई। केबिन का दरवाजा अभी भी बंद था। टेट आँखें फाड़े यह देख रहा था।

उधर महिला अदृश्य हुई, इधर विल्मोट नींद से जागकर हड़बड़ाकर उठ बैठा। उसने अभी-अभी एक सपना देखा था। सपने

में उसकी पत्नी आई, माथा सहलाया, कुछ बोली, जो वह समझ नहीं सका। फिर चली गई। विल्मोट उठा, तो टेट उसे ही देख रहा था। उसने बताया कि तुम तो सो रहे थे, पर मैंने अभी-अभी यह दृश्य देखा। उसका विवरण सुनकर विल्मोट ने बताया—"बिल्कुल इसी तरह मैंने स्वप्न में देखा।" दोनों द्वारा देखे गये दृश्य की समानता से विल्मोट ने सोचा—"इसमें जरूर कोई अर्थ निहित है। शायद मेरी पत्नी अस्वस्थ हो।"

जब तक वह घर नहीं पहुँच गया, चिंतातुर बना रहा। घर जाकर देखा कि पत्नी सामान्य रीति से काम कर रही है। समय पाकर उसने उस रात की विचित्र घटना बताई। तब वह बताने लगी—"उस रात मुझे जब रेडियो पर खबर सुनाई पड़ी कि अटलांटिक में तूफान आया है, तब मैं परेशान हो गई। तुम्हारे बारे में सोचती-सोचती मैं सो गई।" स्वप्न में मैंने महसूस किया कि मैं पता नहीं कैसे चलकर एक समुद्री जहाज के भीतर पहुँच गयी हूँ ? तुम उस केबिन में सो रहे हो। वहीं एक और व्यक्ति दिखा, परंतु वह जाग रहा था। उसे देखकर मैं ठिठकी। फिर, तुम्हारे पास जाकर माथा सहलाया। पूछा कि "तुम्हें दिक्कत तो नहीं हुई ?" इसके बाद मेरी नींद खुल गई। विल्मोट ने यह सब सुना तो उस रात स्वयं को जहाज में दिखे स्वप्न और टेट के बताए विवरण से पत्नी के विवरण का पूर्ण सादृश्य देखकर विस्मित रह गया।

स्पष्ट है कि ये घटनाएँ मात्र विचारों के दूर संप्रेषण का मामला नहीं है। यदि मात्र विचार ही उतनी दूर तक फैलकर संबद्ध व्यक्ति तक पहुँच गए होते, तो यह 'टेलीपैथी' के अंतर्गत आ सकता था किंतु प्रस्तुत घटनाएँ उससे भिन्न हैं। यहाँ विचारों के साथ व्यक्तित्व ने भी संबद्ध व्यक्तियों तक देश की परिधि लाँघकर यात्रा की थी। इसके बाद शब्द-वेधी बाण की तरह वापस लौट आया था। जैसे पक्षी दूर-दूर तक उड़कर लौट आएँ, वैसे ही ये व्यक्तित्व भी मानो उड़कर अभीप्सित स्थान एवं व्यक्ति तक जा पहुँचे थे और फिर इच्छित कार्य कर लौट आये थे।

यह कार्य स्थूल-जगत् में ज्ञात तथ्यों और विधियों द्वारा संभव नहीं। जिस समय विल्मोट की पत्नी दूर अंधमहासागर में जहाज पर उसके पास गई थी, उस समय उसका स्थूल शरीर अमरीका के अपने निवास स्थान में ही था। यही स्थिति श्रीमती बटलर के स्थूल शरीर की स्वप्नों के समय होती थी। उन लोगों के स्थूल-शरीर वहीं रहते हुए भी हू-बहू उन्हीं जैसी प्रतिकृति अन्यत्र देखी जाती थी। यह सूक्ष्म शरीर का ही कार्य हो सकता है, जो सूक्ष्म जगत् के नियमों से परिचालित होता है।

भारतीय मनीषियों को प्रत्येक मनुष्य के भीतर सन्निहित इन अद्भुत क्षमताओं की हजारों वर्ष पूर्व जानकारी थी और उन्होंने विस्तार से इन सब शक्तियों, सामर्थ्यों की चर्चाएँ की हैं तथा इनके विकास की विधि-व्यवस्थाएँ भी निरूपित-निर्धारित की हैं। कुछ व्यक्तियों में अपवाद स्वरूप पूर्वजन्मों की संग्रहीत सामर्थ्य सहसा इस प्रकार अनायास प्रकट हो जाती है। किसी समर्थ सत्ता के स्नेह-अनुदान से भी ऐसी क्षमताएँ विकसित देखी जा सकती हैं। योगाभ्यास से प्रयत्नपूर्वक प्रत्येक व्यक्ति इन्हें विकसित कर सकता है। अनायास प्राप्त सामर्थ्य के बारे में संबद्ध व्यक्ति कम जान पाते हैं, उस क्षमता के इच्छानुसार उपयोग की प्रक्रिया, उन्हें प्रायः नहीं ज्ञात होती। किंतु योग-साधक अपनी ऐसी क्षमताओं के इच्छित उपयोग में समर्थ होते हैं, क्योंकि वे उसके पीछे क्रियाशील सूक्ष्मसत्ताओं को जानते होते हैं।

तंत्र-विज्ञान में छाया-पुरुष का साधना-विधान है। सूक्ष्म शरीरधारी सजीव छाया-पुरुष अपना ही अंश होता है। उसकी सिद्धि में अपना ही एक और शरीर अपने हाथ में अपने अधिकार में प्रकट होकर आ जाता है, जो अपने ही जीवित भूत की तरह होता है और भूतों जैसी अतींद्रिय शक्तियों से संपन्न होता है। योगी अपने सूक्ष्म शरीर से और अस्मिता से विनिर्मित निर्माण-चित्रों द्वारा एक ही साथ अनेक कार्य करने में समर्थ होते हैं। यह शक्तिशाली व्यक्तित्व है तो हममें से हर एक के पास, किंतु उसे

जागृत—विकसित करने लायक साधना-प्रयास सब कर नहीं पाते। जो कर लेते हैं, वे न केवल एक अद्वितीय उपकरण के स्वामी हो जाते हैं, अपितु सूक्ष्म जगत् के नियमों के भी ज्ञाता हो जाते हैं और उनकी बौद्धिक-भावनात्मक सीमाएँ बहुत विस्तृत हो जाती हैं। संकीर्णता उनमें नहीं रह जाती।

स्थूल शरीर से परे मनुष्य के सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व अब विज्ञान द्वारा भी प्रमाणित होने लगा है। सन् १९६३ से अब तक रूस के वैज्ञानिकों ने इस दिशा में कई सफल प्रयोग किए हैं। वहाँ के एक इलेक्ट्रॉन विशेषज्ञ सेमयोन किर्लियान ने अपनी वैज्ञानिक पत्नी वेलिंटाना के सहयोग से फोटोग्राफी की एक विशिष्ट प्रविधि का आविष्कार किया। इस विधि द्वारा सजीव प्राणियों के आस-पास होने वाले सूक्ष्म कंपनों और देह ऊर्जा के क्रिया-कलापों का छायांकन किया जा सकता है।

एक-दूसरे प्रयोग में किर्लियान दंपत्ति ने एक रुग्ण स्त्री की फिल्म खींची। इसमें प्रकाश कणों का वह वलय आरंभ से जीर्ण था और वह शीघ्र ही समाप्त भी हो गया। अगले प्रयोग में किर्लियान दंपत्ति ने एक मनुष्य के पास से उसके शरीर के चित्र इसी विशेष विधि से लिए। ये छाया चित्र उसके शरीर के विभिन्न भागों के लिए गए थे। गर्दन, हृदय और उदर प्रदेश के अत्यंत निकट से खींचे गए इन चित्रों में बहुत ही सूक्ष्म धब्बे दिखाई दिए, जो इन अंगों से विसर्जित होने वाली विद्युतीय ऊर्जा के द्योतक थे। इन छाया चित्रों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रत्येक प्राणी के दो शरीर होते हैं। पहला प्राकृतिक अथवा भौतिक जो आँखों से दिखाई देता है और दूसरा सूक्ष्म शरीर, जिसकी सब विशेषताएँ प्राकृतिक शरीर जैसी होती हैं, पर जो दिखाई नहीं देता। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह सूक्ष्म शरीर ऐसे सूक्ष्म पदार्थों का बना होता है, जिनके इलेक्ट्रॉन ठोस शरीर के इलेक्ट्रॉनों की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से चलायमान होते हैं। उनके अनुसार सूक्ष्म शरीर भौतिक शरीर से अलग होकर कहीं भी विचरण कर सकता है।

रूस के अतिरिक्त अमेरिका में भी इस विषय पर काफी वैज्ञानिक खोजें चल रही हैं। न्यूयार्क राज्य विश्वविद्यालय ने परा मानसिक तत्त्वों की खोज के लिए एक स्वतंत्र विभाग ही खोला है, जिसके अध्यक्ष डॉ० राबर्ट बेफर हैं। अधिकांश लोगों का दृष्टि केंद्र चर्म-चक्षुओं से दिखाई पड़ने वाला भौतिक शरीर है और वे इसी की सुख-सुविधा के लिए सारे जोड़-तोड़ बिठाते रहते हैं। सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व और उसकी आवश्यकताओं पर भी ध्यान दिया जाए, उसके परिपोषण, अभिवर्धन एवं जागरण का क्रम चल पड़े तो उससे इतना कुछ प्राप्त किया जा सकता है, जिसे असामान्य चमत्कार के रूप में जाना जाता है, क्योंकि जब मनुष्य केवल इस शरीर को ही सुखी बनाने के लिए प्रयत्न नहीं करेगा वरन् वह अपनी आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होगा। भारतीय अध्यात्म इस क्षेत्र में पहले ही काफी आगे बढ़ चुका है। कहना न होगा, प्राचीन काल में जन-सामान्य का सदाचारनिष्ठ और सत्यपरायण होना अध्यात्म के गहन आधारों पर अवलंबित रहने का सुपरिणाम ही था।

❑ ❑

बायोलॉजिकल प्लाज्मा बॉडी

*

अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार जार्ज एलन नॉट ने एक वैज्ञानिक उपन्यास लिखा है—"जर्नी बाय अनवैज"। उपन्यास में एलन नॉट ने एक ऐसे यान की कल्पना की है, जिसमें नायक कुछ ही मिनटों में हजारों मील की यात्रा कर लेता है। यान प्रकाश की गति से चलता है और नायक यात्रियों को इच्छित स्थान पर उतार देता है। यह यान न किसी धातु का बना होता है और न ही इसमें कोई यंत्र लगा होता है। बल्कि कुछ वैज्ञानिक अपनी संकल्प शक्ति से सूक्ष्म अणुओं को इस प्रकार जोड़ते हैं कि उसमें बैठकर यात्री भारहीन हो जाता है। यान चालक संकल्प करता है, अमुक जगह पहुँचना है और यान के सूक्ष्म यंत्र चलने लगते हैं। चलने लगता है—यह कहना भी गलत होगा, क्योंकि कुछ ही पल में, इतनी शीघ्र कि लगता है तत्काल गंतव्य स्थान पर खड़ा दिखाई देता है।

उपन्यास का कथानक कल्पना के ताने-बाने से बुना गया है और लगता है कि कल्पना असंभव कल्पना है। परंतु वुडलैंड (अमेरिका) के डॉक्टर जियो वर्नहाट ने एक ऐसा ही अनुभव किया, जिसमें वे इच्छा मात्र से तुरंत अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच गए। अपना अनुभव बताते हुए उन्होंने अमेरिका से प्रकाशित होने वाली परामनोविज्ञान की एक प्रसिद्ध पत्रिका में लिखा—"उस समय मेरा पुत्र वियतनाम के मोर्चे पर गया था। सन् १९७१ की घटना है। एक दिन मुझे बैठे-बैठे लगा कि मेरा पुत्र किसी खतरे में है और मुझे पुकार रहा है। इस आभास के साथ ही मुझे यह अनुभव भी हुआ कि मेरा शरीर हवा से भी हल्का हो गया है और मैं तुरंत वुडलैंड से हजारों मील दूर उस अनजान स्थान पर पहुँच गया हूँ, जहाँ मेरा लड़का तैनात है।"

वहाँ जाकर मैंने देखा चारों ओर आग लगी हुई है। जॉन एक तंबू में फँसा हुआ है और उसके ऊपर लोहे का वजनी ट्रंक गिर

पड़ा है, जिसके नीचे वह दबा हुआ है। मैंने तुरंत उस ट्रंक को जॉन के ऊपर से हटाया और तंबू के बाहर ले जाकर उसे खड़ा कर दिया।

इसके बाद मेरा अपना शरीर पूर्ववत् हो गया लगा। आँखें खोलीं तो प्रतीत हुआ कि जैसे तंद्रा टूट गयी हो। पास ही मेरी पत्नी बैठी मेरी नब्ज टटोल रही थी। मैंने पूछा—क्या हुआ ? तो वह बोली मुझे ऐसा लगा जैसे आप एबनार्मल हैं। मैंने उसे अपना अनुभव सुनाया, तो वह बोली आपने कोई दुःस्वप्न देखा होगा। परंतु मुझे न जाने क्यों अपनी पत्नी की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था। छह महीने बाद जब जॉन छुट्टी पर लौटा तो उसने युद्ध के अनुभव सुनाते समय एक अग्निकांड में फँस जाने और वहाँ से चमत्कारी ढंग से निकल जाने की घटना सुनाई।

इस घटना के संबंध में वर्नहाट का विश्वास है कि दूरबोध द्वारा उक्त दुर्घटना की सूचना पाकर, उनका सूक्ष्म शरीर ही जॉन को बचाने के लिए गया था, तो क्या सूक्ष्म शरीर से हर कहीं तत्क्षण पहुँचा जा सकता है। अध्यात्म विज्ञान इसका उत्तर 'हाँ' में देता है और विज्ञान का ध्यान भी इस तथ्य की ओर आकर्षित होने लगा है। ऐसी कई घटनाओं के विवरण संकलित किये जा चुके हैं, जिनमें सूक्ष्म की शक्ति ही क्रियाशील दिखाई दी है।

सूक्ष्म देह-स्थूल देह से अलग हो सकती है, यह तो कई व्यक्तियों के अनुभव में आ चुका है। पिछले दिनों अमेरिका की विश्वविख्यात अभिनेत्री एलिजाबेथ टेलर का अनुभव प्रकाशित हुआ था। उसमें बताया गया था कि टेलर का कोई गंभीर आपरेशन किया जाना था, टेलर को आपरेशन टेबिल पर लिटाया गया और बेहोश किया गया। आपरेशन काफी समय तक चला और जब पूरा हो गया तो डॉक्टरों का अकस्मात् ध्यान गया कि टेलर की काया निष्प्राण हो चुकी है। उसकी साँस भी बंद हो गयी थी, नाड़ी डूबती जा रही थी, हृदय भी बहुत धीरे-धीरे धड़क रहा था। काफी प्रयत्नों

के बाद वह स्वस्थ हो सकी और जब वह स्वस्थ हुई तो उसने कहा—'मैंने अपना आपरेशन अपनी आँखों से देखा है।'

टेलर तो बेहोश थी। भला अपना आपरेशन आप कैसे देख सकती थी ? डॉक्टरों ने पूछा तो उसने बताया कि 'तब मैं अपने शरीर को भी उसी प्रकार देख सकती थी, जैसे कि किसी दूसरे का देख सकती हूँ। सिर, चेहरा, मुँह, नाक आदि सब कुछ। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे मैं अपने शरीर के बाहर निकल आई हूँ और अपने शरीर को उस प्रकार देख रही हूँ, जैसे वह किसी दूसरे का शरीर हो, उस समय मैं अपने आपको बहुत हल्का-फुल्का अनुभव कर रही थी।

एलिजाबेथ टेलर कहीं उस समय स्वप्नों के सागर में तो नहीं खो गयी थी, यह जाँचने के लिए डॉक्टरों ने कहा अच्छा आपरेशन के दौरान क्या-क्या हुआ यह बताइए। टेलर ने आपरेशन की प्रत्येक प्रक्रिया बता दी, यही नहीं डॉक्टरों ने कौन-सी वस्तुएँ आपरेशन के कौन-से उपकरण किस क्रम से इस्तेमाल किए यह भी बता दिया। एलिजाबेथ ने यह भी बताया कि अमुक उपकरण यथास्थान उपलब्ध न होने के कारण प्रमुख सर्जन किस प्रकार झल्ला उठे थे और उन्होंने कौन-कौन से शब्द कहे थे ?

इन अनुभूतियों को सुनकर एलिजाबेथ की बातों पर किसी को संदेह न रहा। भारतीय अध्यात्म-दर्शन से परिचित व्यक्तियों के लिए यह घटना नितांत सहज हो सकती है, क्योंकि यहाँ स्थूल के अतिरिक्त सूक्ष्म और कारण शरीर का अस्तित्व भी सदा से स्वीकारा जाता रहा है, परंतु पश्चिम के लिए यह घटना चौंका देने वाली हो सकती है। ऐसी बात नहीं है कि पश्चिम में शरीर से परे आत्मा के अस्तित्व को कभी स्वीकारा ही नहीं गया हो। वहाँ भी जिन संत- महात्माओं ने अध्यात्म विज्ञान की खोज की, उन्होंने सूक्ष्म के अस्तित्व को स्वीकारा, परंतु आधुनिक पदार्थ विज्ञान ने उन बातों को अंधविश्वास का फतवा देकर, बुद्धिजीवियों के दिमाग से उन आस्थाओं को पोंछ-सा ही दिया।

इसके बावजूद भी इस तरह की घटनाएँ घटती रही हैं, जिनके कारण पदार्थ विज्ञानियों को यह सोचने के लिए विवश होना पड़ा कि मनुष्य की चेतना स्थूल शरीर से बँधी हुई नहीं है। वह इच्छानुसार कहीं भी आ-जा सकती है। प्रसिद्ध मनश्चिकित्सा विज्ञानी डॉ० थैमला मोस ने सिद्ध कर दिखाया है कि "कोई भी व्यक्ति अपनी चेतना को अपने शरीर से बाहर निकाल सकता है और पल भर में हजारों मील दूर जा सकता है।"

शरीर के नियम बंधनों से मुक्त मानवी चेतना को प्रमाणित करने के लिए डॉ० मोस ने कई घटनाओं का उल्लेख किया है। उनमें से एक घटना सन् १९०८ की है। ब्रिटेन के 'हाउस ऑफ लार्ड्स' का अधिवेशन चल रहा था। इस अधिवेशन में विरोधी दल ने सरकार के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव रखा था और उस दिन प्रस्ताव पर मत संग्रह किया जाना था। विरोधी पक्ष तगड़ा था, अतः सरकार को बचाने के लिए सत्तारूढ़ दल के सभी सदस्यों का सदन में उपस्थित होना आवश्यक था। इधर सत्तारूढ़ दल के एक प्रतिष्ठित सदस्य सर कॉर्नराश गंभीर रूप से बीमार पड़े हुए थे। उनकी स्थिति इस लायक भी नहीं थी कि वे शैया से उठकर चल-फिर भी सकें, जबकि उनकी हार्दिक आकांक्षा यह थी कि वे भी मतदान में भाग लें। उन्होंने डॉक्टरों से बहुत कहा कि उन्हें किसी प्रकार मतदान के लिए सदन में ले जाया जाए, परंतु डॉक्टर अपने कर्त्तव्य से विवश थे। आखिर उनका जाना संभव न हो सका। परंतु सदन में कई सदस्यों ने देखा कि सर कॉर्नराश अपने स्थान पर बैठे मतदान में भाग ले रहे हैं, जबकि डॉक्टरों का कहना था कि वे अपने बिस्तर से हिले तक नहीं।

एक दूसरी घटना का उल्लेख करते हुए डॉ० मोस ने लिखा है—"ब्रिटिश कोलंबिया विधान सभा का अधिवेशन विक्टोरिया हाउस में चल रहा था। उस समय एक विधायक चार्ल्सवुड बहुत बीमार थे, डॉक्टरों को उनके बचने की उम्मीद नहीं थी, परंतु उनकी उत्कट इच्छा थी कि वे अधिवेशन में भाग लें। डॉक्टरों ने

उन्हें बिस्तर से उठने के लिए भी मना कर दिया था और वे अपनी स्थिति से विवश बिस्तर पर लेटे थे। परंतु सदन में सदस्यों ने देखा कि चार्ल्स विधान सभा में उपस्थित हैं। अधिवेशन की समाप्ति पर सदस्यों का जो चुपचाप फोटो लिया गया, उसमें चार्ल्सवुड भी विधान सभा की कार्यवाही में भाग लेने वाले सदस्यों के साथ उपस्थित थे।

विश्वविख्यात दार्शनिक, चिंतक और मनोवैज्ञानिक डॉ० कार्लजुंग ने तो स्वयं एक बार सूक्ष्म शरीर के शरीर से बाहर जाने का अनुभव किया था। उन्होंने 'मेमोरीज ड्रीम्स एंड रिफ्लेक्शन्स' नामक पुस्तक में इस घटना का सविस्तार वर्णन किया है। घटना सन् १९४४ की है, उस वर्ष जुंग को दिल का दौरा पड़ा। दौरा बहुत खतरनाक था और डॉक्टरों के अनुसार जुंग का मौत से आमना-सामना हो रहा था। जुंग ने उस समय के अनुभव को इन शब्दों में लिखा है—"जब मुझे दवा दी जा रही थी और प्राण रक्षा के लिए इंजेक्शन लगाए जा रहे थे, तब मुझे कई विचित्र अनुभव हुए। कहना मुश्किल है, मैं उस समय अचेत था अथवा स्वप्न देख रहा था। पर मुझे यह स्पष्ट अनुभव हो रहा था कि मैं अंतरिक्ष में लटका हुआ हूँ और धुनी हुई रुई के गोलों की तरह हल्का-फुल्का हूँ। मैं उस समय जहाँ था, वहाँ से हजार मील दूर पर स्थित येरूशलम शहर को इस प्रकार देख रहा था कि जैसे मैं विमान में बैठकर आकाश से नीचे झाँक रहा हूँ। इसके बाद मैं एक पूजागृह में प्रविष्ट हुआ। वहाँ मैंने अनुभव किया कि मेरा शरीर इतना हल्का हो गया है कि कहीं भी आने-जाने के लिए स्वतंत्र हूँ। तभी मेरे ऊपर कोई छाया-सी मँड़राती दिखाई दी। उस छाया ने मुझसे कहा कि तुम्हें अपने भौतिक शरीर में प्रवेश कर जाना चाहिए। जैसे ही मैंने उस छाया के आदेश का पालन किया, मैंने अनुभव किया कि मैं अब स्वतंत्र नहीं हूँ, परंतु इस अनुभूति ने मुझे जो अंतर्दृष्टि प्रदान की, उसने मेरे सभी संदेह समाप्त कर दिए तथा मैंने जान लिया कि जीवन की समाप्ति पर क्या होता है ?"

भौतिक विज्ञान पदार्थ का विश्लेषण करते-करते इस बिंदु तक तो पहुँच ही गया है कि जिन्हें हम पदार्थ कहते हैं, वह वस्तुतः कोई स्वतंत्र इकाई नहीं है बल्कि किसी भी पदार्थ का छोटे-से छोटा कण भी असंख्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों का संघटक है। इन घटकों को कण कहा जाता है। इससे आगे शोध करने पर वैज्ञानिकों ने चेतना के दर्शन आरंभ किये हैं।

सन् १९६८ में डॉ० वी० इन्यूशिन, बी० ग्रिस, चेको, एन० नोरोवोव, एन० केरारोवा तथा गुवादुलिन आदि रूसी वैज्ञानिकों ने लंबे समय तक अनुसंधान और प्रयोग करने के बाद घोषित किया कि जीव-जंतुओं का शरीर मात्र भौतिक अणु-परमाणुओं से नहीं बना है बल्कि इसके अतिरिक्त एक ऊर्जा शरीर भी है।

वैज्ञानिकों ने इस शरीर को 'द बॉयोलॉजिकल प्लाज्मा बॉडी' नाम दिया है। इस शरीर के संबंध में यह बताया गया है कि यह केवल उत्तेजित विद्युत् अणुओं से बने प्रारंभिक जीवाणुओं के समूह का योग भर नहीं है वरन् एक व्यवस्थित तथा स्वचालित घटक है, जो अपना स्वयं का चुंबकीय क्षेत्र निःसृत करता है।

अध्यात्म विज्ञान ने चेतना को स्थूल की पकड़ से सर्वथा परे बताया है, उसे केवल अनुभव ही किया जा सकता है। फिर भी प्राणियों का शरीर निर्मित करने वाले घटकों का जितना विवेचन, विश्लेषण अभी तक हुआ है, उससे प्रतीत होता है कि आज नहीं तो कल विज्ञान भी इस तथ्य को अनुभव कर सकेगा कि चेतना को स्थूल यंत्रों से नहीं, विकसित चेतना के माध्यम से ही अनुभव किया जा सकेगा।

'द बॉयोलॉजिकल प्लाज्मा बॉडी' का अध्ययन करते हुए वैज्ञानिकों ने उसके तत्त्वों का भी विश्लेषण किया। बॉयोप्लाज्मा की संरचना और कार्यविधि का अध्ययन करने के लिए सोवियत वैज्ञानिकों ने कई प्रयोग किये और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बॉयोप्लाज्मा का मूल स्थान मस्तिष्क है और यह तत्त्व मस्तिष्क में

ही सर्वाधिक सघन अवस्था में पाया जाता है तथा सुषुम्ना नाड़ी और स्नायुविक कोशाओं में सर्वाधिक सक्रिय रहता है।

शास्त्रकार ने इस शरीर की तुलना एक ऐसे वृक्ष से की है, जिसकी जड़ें ऊपर और शाखाएँ नीचे की ओर हैं। जिस प्राण ऊर्जा के अस्तित्व को वैज्ञानिकों ने अनुभव किया, वह आत्मचेतना नहीं है बल्कि सूक्ष्म शरीर के स्तर की ही शक्ति है, जिसे मनुष्य शरीर की विद्युतीय ऊर्जा भी कहा जाता है। यह ऊर्जा प्रत्येक जीवधारी के शरीर में विद्यमान रहती है।

येल विश्वविद्यालय में न्यूरो अकादमी के प्रोफेसर डॉ० हेराल्डवर ने सिद्ध किया है कि प्रत्येक जीवित प्राणी चाहे वह कीड़ा ही क्यों न हो 'इलेक्ट्रोडायनमिक' क्षेत्र से आवृत्त रहता है।

बाद में इसी विश्वविद्यालय के एक अन्य वैज्ञानिक डॉ० लियोनार्ड रावित्ज ने इस खोज को आगे बढ़ाया और कहा—इस क्षेत्र को मस्तिष्क के द्वारा प्रभावित किया जा सकता है। भारतीय अध्यात्म ने इन शक्तियों के विकास हेतु ध्यान-धारणा का मार्ग बताया है।

अब यह लगभग निश्चित हो चला है कि विज्ञान भी उसी दिशा में आगे बढ़ रहा और सफल हो रहा है, जिस सफलता को योग और दर्शन बहुत पहले प्राप्त कर चुका है। पुराणों और धर्मग्रंथों में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं, जिन्हें चमत्कारी घटनाएँ कहा जाता है।

सूक्ष्म की सत्ता और सामर्थ्य को देखते हुए यह भी असंभव नहीं लगता कि प्राचीनकाल में ऋषि, महर्षि, देवता, असुर आदि संकल्प बल से या सूक्ष्म के माध्यम से सुदूर ग्रह-नक्षत्रों की यात्रा पलक झपकते ही संपन्न कर लेते हों। कौन जाने अगले कुछ ही वर्षों में विज्ञान ही ग्रह-नक्षत्रों पर खर्चीले तथा भारी यंत्रों से लदे यान की अपेक्षा सूक्ष्म के माध्यम से वहाँ पहुँचने की विधि खोज निकाले। प्रसिद्ध इलेक्ट्रॉनिक विशेषज्ञ डॉ० निकोवसन ने तो यहाँ तक कहा है कि अगले सौ पचास वर्षों में इलेक्ट्रॉनिकी इतनी

विकसित हो जायेगी कि किसी भी वैज्ञानिक को किसी भी ग्रह पर भेजा जा सकेगा। करोड़ों मील दूर स्थित ग्रह पर बैठा कोई वैज्ञानिक किसी गुत्थी के बारे में पूछेगा, तो उसे कहा जा सकेगा कि एक मिनट रुकिये अभी पहुँच रहा हूँ और यह सब सूक्ष्म शरीर के द्वारा ही संभव हो सकेगा।

शरीर केवल वह एक ही नहीं है, जिसे हम धारण किए हुए हैं और जो दीखता अनुभव होता है, उसके भीतर दो और शरीर हैं, जिन्हें सूक्ष्म और कारण शरीर कहते हैं। इनमें सूक्ष्म शरीर अधिक सक्रिय और प्रभावशाली है। मरण के उपरांत उसी का अस्तित्व रह जाता है और उसी के सहारे नया जन्म होने तक की समस्त गतिविधियाँ चलती रहती हैं।

मरने के उपरांत इंद्रियाँ, मन, संस्कार तथा पाप-पुण्य साथ जाते हैं। मरण से पूर्व वाले जन्म का स्मरण भी इसी शरीर में बना रहता है, इसलिए अपने परिवार वालों का पहचानता और याद भी करता है। अगले जन्म में इस पिछले जन्म के संस्कारों को ढोकर ले जाने में भी यह सूक्ष्म शरीर ही काम करता है। वस्तुतः मरण के पश्चात् एक विश्राम जैसी स्थिति आती है, उसमें लंबे जीवन में जो दिन-रात काम करना पड़ता है, उसकी थकान दूर होती है। जैसे रात को सो लेने के पश्चात् सबेरे ताजगी आती है, उसी तरह नये जन्म के लिए इस मध्य काल के विश्राम से फिर कार्य क्षमता प्राप्त हो जाती है, जिनका मृत्यु के उपरांत तुरंत पुनर्जन्म हो जाता है, विश्राम न मिल पाने से थकान बनी रहती है और शरीर तथा मन में अस्वस्थता देखी जाती है।

सूक्ष्म शरीर इस जन्म में भी स्थूल शरीर के साथ ही सक्रिय रहता है। रात्रि को सो जाने के उपरांत जो स्वप्न दीखते हैं, वह अनुभूतियाँ सूक्ष्म शरीर की ही हैं। दिव्य दृष्टि, दूरश्रवण, दूरदर्शन, विचार संचालन, भविष्य ज्ञान, देव दर्शन आदि उपलब्धियाँ भी सूक्ष्म शरीर के माध्यम से ही होती हैं। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की उच्चस्तरीय योग-साधना द्वारा इसी शरीर को समर्थ

बनाया जाता है। ऋद्धियों और सिद्धियों का स्रोत इस सूक्ष्म शरीर को माना जाता है।

स्थूल शरीर तो मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाता है। नया शरीर तुरंत ही नहीं मिलता, उसमें देर लग जाती है। इस मरण और जन्म के बीच की अवधि में प्राणी को सूक्ष्म शरीर का सहारा लेकर ही रहना पड़ता है। शरीर धारण कर लेने के बाद भी उसके अंतर्गत सूक्ष्म शरीर और कारण शरीरों का अस्तित्व बना रहता है। अतींद्रिय ज्ञान उन्हीं के द्वारा होता है और उपासना-साधना द्वारा इन्हीं दो अप्रत्यक्ष शरीरों को परिपुष्ट बनाया जाता है। यह अंदर का शरीर यदि बलवान हो तो बाह्य शरीर में तेज, शौर्य, प्रकाश, बल और ज्ञान की आभा सहज ही प्रस्फुटित दीखती है। उत्साह और उल्लास भी सूक्ष्म शरीर की निरोगता का ही परिणाम है।

स्वर्ग और नरक का जैसा कि वर्णन है, उसका उपयोग सूक्ष्म शरीर द्वारा ही संभव है। पिछले जन्म के ज्ञान, संस्कार, गुण, रुचि आदि का अगले जन्म में उपलब्ध होने का आधार भी यह सूक्ष्म शरीर है। भूत-प्रेतों का अस्तित्व इसी परोक्ष शरीर पर निर्भर है और दिव्य-अनुभूतियाँ, योग की सिद्धियाँ, स्वप्नों पर परिलक्षित सच्चाइयाँ आदि प्रक्रियाएँ सूक्ष्म शरीर से ही संभव हो सकती हैं।

इतिहास, पुराणों में सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व सिद्ध करने वाली अनेक घटनाओं का वर्णन मिलता है। भगवान् शंकराचार्य ने राजा अमरूक के मृत शरीर में अपना सूक्ष्म शरीर प्रबद्ध करके, गृहस्थ जीवन संबंधी ज्ञान प्राप्त किया था। रामकृष्ण परमहंस ने महाप्रयाण के उपरांत भी विवेकानंद को कई बार दर्शन तथा परामर्श दिये थे। पुराणों में तो पग-पग ऐसे कथानकों का उल्लेख है।

थियोसोफिकल सोसाइटी की जन्मदात्री मैडम ब्लावटस्की के बारे में कहा जाता है कि वे अपने को कमरे में बंद करने के उपरांत भी जनता को सूक्ष्म शरीर से दर्शन और उपदेश देती थीं। कर्नल टाउन शेंड के बारे में ऐसे ही प्रसंग कहे जाते हैं। पाश्चात्य

योग-साधकों में से हैर्वटलमान, लिंडार्स, एंड्र जैक्शन, डॉ० माल्थ, जेल्ट कारिंगटन, डुरावेल, मुलडोन, आलिवर लाज, पावर्स, डॉ० मेस्मर, ऐलेक्जेंड्रा, डेविडनीत, ब्रंटन आदि के अनुभवों और प्रयोगों में सूक्ष्म शरीर की प्रामाणिकता सिद्ध करने वाले अनेक प्रमाण उपस्थित किए गए हैं। जे० मुलडोन अपने स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर को पृथक् करने के कितने प्रदर्शन भी कर चुके थे ? इन्होंने इस सबकी चर्चा अपनी पुस्तक 'दी प्रोजेक्शन ऑफ एस्ट्रल बॉडी' में विस्तारपूर्वक की है।

भारतवर्ष में स्वामी विशुद्धानंद तथा स्वामी निगमानंद जी भी अपनी ऐसी अनुभूतियों को प्रमाणित कर चुके हैं। कहा जाता है कि तैलंग स्वामी को नंगे फिरने के अपराध में काशी के एक अंग्रेज अधिकारी ने जेल में बंद करा दिया। दूसरे दिन वे जेल से बाहर टहलते हुए पाए गए। नाथ संप्रदाय के महींद्रनाथ, गोरखनाथ, जालंधरनाथ, कणप्पा आदि के बारे में भी ऐसे ही वर्णनों का उल्लेख है।

आत्मा के अस्तित्व और शरीर न रहने पर भी उसका अस्तित्व बने रहने के बारे में पाश्चात्य दार्शनिकों और तत्त्ववेत्ताओं में से जिन्होंने इस संबंध में अधिक स्पष्ट समर्थन किया है, उनमें राल्फ वाल्डो ट्राइन, मिडनी, फ्लोवर, एलाह्वीलर, बिलकाक्स, विलियम वाकर, एटकिंसन, जेम्स, केनी आदि का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। पुराने दार्शनिकों में से कार्लाइल, इमर्सन, कांट, हेगल, थामस, हिलमीन डायसन आदि का मत भी इसी प्रकार का था।

जो कार्य हम स्थूल जीवन में करते हैं या मस्तिष्क में जैसे विचार भरे रहते हैं, उनकी छाप सूक्ष्म शरीर पर पड़ती रहती है और वह छाप ही संस्कार बन जाती है। मनुष्य का चिंतन और कर्म जिस दिशा में चलता रहता है, कालांतर में वही स्वभाव बन जाता है और बहुत समय तक जिस स्वभाव को अभ्यास में लाया जाता रहता है, उसी तरह के संस्कार बन जाते हैं। यह संस्कार ही

परिपक्व होकर, शुभ-अशुभ प्रारब्ध एवं कर्मफल का रूप धारण करते रहते हैं। इस प्रकार कर्मफल प्रदान करने की स्वसंचालित प्रक्रिया भी इसी सूक्ष्म शरीर से संपन्न होती रहती है।

जिस प्रकार अखाद्य खाने, दूषित जलवायु में रहने और असंयम बरतने से बाह्य शरीर दुर्बल एवं रुग्ण हो जाता है, उसी प्रकार बुरे कर्म और बुरे चिंतन से सूक्ष्म शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है और वह अपनी समर्थता खो बैठता है। कुमार्गगामी का अंतःकरण सदा दुर्बल और कायर बना रहता है, फलस्वरूप अनेक मानसिक रोग उठ खड़े होते हैं। यों तो सूक्ष्म शरीर दूध में मक्खन की तरह समस्त शरीर में व्याप्त है। पर उसका मुख्य स्थान मस्तिष्क माना गया है। बुरे विचारों से मन मस्तिष्क और सूक्ष्म शरीर का सामान्य स्वास्थ्य संतुलन नष्ट हो जाता है, फलस्वरूप मनुष्य का व्यक्तित्व ही लड़खड़ाने लगता है और प्रगति के सारे मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं।

❒ ❒

स्थूल ही नहीं सूक्ष्म का भी ध्यान रखें

*

इस विश्व में जो कुछ दृश्यमान होता है, वह अदृश्य की परिणति है। इस विश्व ब्रह्मांड में जो कुछ अदृश्य सूक्ष्म बिखरा पड़ा है, उसका लाख-करोड़वाँ हिस्सा भी दृश्यमान नहीं होता है। पर जो कुछ अनुभव में आता है, वह अनुभव से अगम्य-इंद्रियातीत विराट् का एक नगण्य-सा अंश मात्र ही होता है। विराट् ब्रह्मांड में जितना प्रचुर अग्नि तत्त्व भरा पड़ा है, हमारा सूर्य उसका राई-रत्ती जितना अंश ही है। उस सूर्य की भी दसों दिशाओं में जितनी ऊष्मा फैलती है, उसका हम लोग पृथ्वी की ओर विकीर्ण होने वाली गर्मी में से भी एक तुच्छ अंश ही अनुभव कर पाते हैं।

शरीर में प्रत्यक्ष उष्णता के रूप में दीखने वाला बुखार वस्तुतः इन कोटि-कोटि अदृश्य रोग-कीटाणुओं के उपद्रव की एक नन्हीं-सी झलक ही है। वे रोग-कीट हजारों तरह के उपद्रवों की पृष्ठ भूमि देह के भीतर रच रहे होते हैं, पर हमें उनमें से चमड़ी पर उभरने वाली गर्मी मात्र को ही अनुभव होता है। भीतर के अंगों में जो ताप या विग्रह उन रोग-कीटों ने उत्पन्न किया होता है, वह तो विदित ही नहीं होता। मनुष्य की काया को ही लीजिए। इतना लंबा-चौड़ा शरीर वस्तुतः एक सूक्ष्म वीर्यकण और उसके भीतर रहने वाले 'जीन्स' न्यूक्लियस आदि अति सूक्ष्म तत्त्वों की परिणति मात्र होता है। वह अदृश्य सूक्ष्मता की काया के रूप में जितनी प्रकट होती है, उससे भी अधिक गुनी विशेषताएँ फिर भी अनुभव में न आने पर भी विद्यमान रहती हैं।

विराट् ब्रह्मांड का वास्तविक स्वरूप उसका सूक्ष्म 'शक्ति अंश' ही है, जिसे परा और अपरा प्रकृति के नाम से जाना जाता है। उसके कर्तृत्व का नन्हा-सा अंश ही स्वतः हमारी मनः चेतना की पकड़ में आता है। जो दृश्य है उसके इर्द-गिर्द अदृश्य शक्ति स्रोत की असीम प्रवाह धारा बहती रहती है। ग्रह-नक्षत्रों से लेकर वन, पर्वत, सागर,

सरिता तक सब पर यही बात लागू होती है। मानव शरीर और भी अधिक विचित्र है। उसकी संवेदनशीलता चुंबक क्षमता इतनी अधिक है कि वह अपनी कोमल ग्रहण शक्ति के कारण इस अदृश्य जगत् की किन्हीं भी अद्भुत शक्तियों को अभीष्ट परिमाण में अपने अंदर खींच सकता है—ग्रहण और धारण कर सकता है।

शरीरशास्त्री जितना ज्ञान अब तक देह के भीतरी और बाहरी अंगों के संबंध में प्राप्त कर चुके हैं, उससे कहीं अधिक गंभीर ज्ञान हमें अपने 'सूक्ष्म' और 'कारण' शरीर के संबंध में प्राप्त करना चाहिए। जो शोधें प्राचीनकाल में हो चुकी हैं, उससे आगे का सारा क्रम ही अवरुद्ध हो गया जबकि आवश्यकता उसे निरंतर जारी रखे जाने की थी। ज्ञान का अंत नहीं। जो प्राचीन काल में जाना जा चुका, वह समग्र नहीं। मानवीय सामर्थ्य और विराट् की अनंतता की तुलना करते हुए यही उचित है कि उपलब्ध ज्ञान को पूर्ण न माना जाए और अन्वेषण कार्य जारी रखा जाए।

सूक्ष्म और कारण शरीरों की स्थिति, शक्ति, संभावना और उपयोग की प्रक्रिया समझने में भूत काल के साधन विज्ञानियों की जानकारियों से लाभ उठाया जाना चाहिए। अंतरिक्ष के सूक्ष्म प्रवाह संचार में पिछले दिनों में जो परिवर्तन हुए हैं और मनुष्य-कलेवर के स्तर में जो भिन्नता आई है, उसे ध्यान में रखते हुए हमें शोध कार्य को आगे बढ़ाना चाहिए।

स्थूल दृश्य शरीर की गतिविधियाँ इस भूलोक तक सीमित हैं; सूक्ष्म शरीर भुवः लोक तक और कारण शरीर स्वःलोक तक अपनी सक्रियता फैलाए हुए हैं। इन भूः भुवः स्वः लोकों को ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र आदि समझने की आमतौर से भूल की जाती है। लोक और ग्रह सर्वथा भिन्न हैं। ग्रह स्थूल हैं लोक सूक्ष्म। इस दृश्यमान अनुभव गम्य भूलोक के भीतर अदृश्य स्थिति में दो अन्य लोक समाए हुए हैं—भुवः लोक और स्वः लोक। वहाँ की स्थिति भू लोक से भिन्न है। यहाँ पदार्थ का प्राधान्य है। जो कुछ भी सुख-दुःख हमें मिलते हैं, वे सब अणु पदार्थों के माध्यम से मिलते हैं।

यहाँ हम जो कुछ चाहते या उपलब्ध करते हैं, वह पदार्थ ही होता है। स्थूल शरीर चूँकि स्वयं पदार्थों का बना है, इसलिए उसकी दौड़ या पहुँच पदार्थ तक ही सीमित हो सकती है। भुवः लोक विचार प्रधान होने से उसकी अनुभूतियाँ, शक्तियाँ, क्षमताएँ, संभावनाएँ, सब कुछ इस बात पर निर्भर करती हैं कि व्यक्ति का बुद्धि संस्थान—विचार स्तर क्या था ?

स्वः लोक भावना लोक है। यह भावना प्रधान है। भावनाओं में रस है। प्रेम का रस प्रख्यात है। माता और बच्चे के बीच, पति और पत्नी के बीच, मित्र और मित्र के बीच कितनी प्रगाढ़ता, घनिष्ठता, आत्मीयता होती है, यह हम प्रत्यक्ष देखते हैं ? वे संयोग में कितना सुख और वियोग में कितना दुःख अनुभव करते हैं ? इसे कोई सहृदय व्यक्ति अपनी अनुभूतियों की तथा उन स्थितियों के ज्वार-भाटे से प्रभावित लोगों की अंतःस्थिति का अनुमान लगाकर वस्तुस्थिति की गहराई जान सकते हैं। यह भाव-संवेदना इतनी सघन होती है कि शरीर और मन को किसी विशिष्ट दिशा में घसीटती हुई कहीं से कहीं ले पहुँचती हैं। श्रद्धा और विश्वास के उपकरणों से देवताओं को विनिर्मित करना और उन पर अपना भावारोपण करके, अभीष्ट वरदान प्राप्त कर लेना—यह सब भाव-संस्थान का चमत्कार है। देवता होते हैं या नहीं, उनमें वरदान देने की सामर्थ्य है या नहीं, इस तथ्य को समझने के लिए हमें मनुष्य की भाव सामर्थ्य की प्रचंडता को समझना पड़ेगा। उसकी श्रद्धा का बल असीम है, जिसकी जितनी श्रद्धा होगी, जिसका जितना गहरा विश्वास होगा, जिसने जितना प्रगाढ़ संकल्प कर रक्खा होगा और जिसने जितनी गहरी भक्ति भावना को संवेदनात्मक बना रखा होगा—देवता उसकी मान्यता के अनुरूप बनकर खड़ा हो जायेगा। वह उतना ही शक्ति-संपन्न होगा और उतने ही सच्चे वरदान देगा।

कहना न होगा कि हर चीज सूक्ष्म होने पर अधिक शक्तिशाली बनती चली जाती है। मिट्टी में वह बल नहीं जो उसके अति सूक्ष्म

अंश अणु में है। हवा में वह सामर्थ्य नहीं जो ईथर में है। पानी में वह क्षमता नहीं जो भाप में है। स्थूल शरीर के गुण धर्म से हम परिचित हैं। वह सीमित कार्य ही अन्य जीव-जंतुओं की तरह पूरे कर सकता है। जो अतिरिक्त सामर्थ्य, अतिरिक्त प्रतिभा, अतिरिक्त प्रखरता मनुष्य के अंदर देखी जाती है, वह उसके सूक्ष्म और कारण शरीरों की ही है। बाहर से सब लोग लगभग एक से दीखने पर भी भीतरी स्थिति के कारण उनमें जमीन आसमान जितना अंतर पाया जाता है, यह रक्त-मांस का फर्क नहीं वरन् सूक्ष्म शरीर की अंतःचेतना में सन्निहित समर्थता और असमर्थता के कारण ही होता है। पंच भौतिक स्थूल काया को जिस प्रकार आहार, व्यायाम, चिकित्सा आदि उपायों से सामर्थ्यवान बनाया जाता है, उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर को भी योग साधना द्वारा परिपुष्ट बनाया जाता है। मनोबल और आत्मबल के कारण जो अद्‌भुत विशेषताएँ लोगों में देखी जाती हैं, उन्हें सूक्ष्म शरीरों की बलिष्ठता ही समझना चाहिए। साधना का उद्देश्य उसी बलिष्ठता को संपन्न करना है।

स्थूल शरीर की शोभा, तृप्ति और उन्नति के लिए हमारे प्रयत्न निरंतर चलते रहते हैं। यदि सूक्ष्म शरीर और कारण शरीरों को उपेक्षित और अविकसित पड़े रहने देने की हानि को हम समझें और उन्हें भी स्थूल शरीर की ही तरह समुन्नत करने का प्रयत्न करें तो ऐसे असाधारण लाभ प्राप्त कर सकते हैं, जिनके द्वारा जीवन कृतकृत्य हो सके। भूलोक में प्राप्त—पदार्थ-संपदाओं से प्राप्त थोड़े-से सुख का हमें ज्ञान है, अस्तु उसी की उधेड़-बुन में लगे रहते हैं। भुवः और स्वः लोकों की विभूतियों को भी जान सकें तो सच्चे अर्थों में संपन्न बन सकते हैं। योग-साधना का प्रयोजन मनुष्य को ऐसी ही समग्र संपन्नता से लाभान्वित करता है।

○ सूक्ष्म शरीर की प्राथमिक ईंटें : प्राण-स्फुलिंग

मनुष्य शरीर जिन सूक्ष्म कणों से बना है, उन्हें कोशिका (सेल) कहते हैं। सारे शरीर को एक कोशिका जाल या भवन कह सकते हैं।

इस कोशिका (सेल) को दो भागों में विभाजित किया जाता है— (१) साइटो-प्लाज्मा (२) नाभिक (न्यूक्लियस)। साइटोप्लाज्मा को उस कोशिका का रसायन भाग और नाभिक-सस्कार भाग कह सकते हैं। जीवन की प्रमुख चेतना इसी नाभिक में प्रकाश, ताप, चुंबकत्व, विद्युत्, ध्वनि और गति के रूप में विद्यमान रहती है। इस तरह शरीर के स्थूल अणुओं में व्याप्त, इस दूसरे जाल की सम्मिलित इकाई का नाम ही सूक्ष्म शरीर है। भारतीय योग विज्ञान में इस तत्व का नाम प्राण और उससे बने सूक्ष्म शरीर को प्राणमय कोश कहा गया है। पूर्व अध्याय में जिस बॉयोलॉजिकल प्लाज्मा बाड़ी का वर्णन किया गया है, वह यह प्राणमय कोश ही है।

○ परा प्रकृति की चेतना शक्ति

शरीर में मन की चेतना पंचतत्वों के सम्मिलन की चेतना मानी जाती है। आत्मा में प्रकाश प्राप्त करते हुए भी यह आत्मा का नहीं, शरीर का ही अंश माना जाता है। इसी प्रकार विश्वव्यापी पंचतत्वों की, महाभूतों की सम्मिलित चेतना का नाम प्राण है। प्राण को ही जीवनीशक्ति कहते हैं। वह वायु में, आकाश में घुला तो रहता है, पर इनसे भिन्न है। जिसे जड़ प्रकृति कहते हैं, वस्तुतः वह भी जड़ नहीं है। उसमें प्राण की एक स्वल्पमात्रा भरी रहती है। पूर्ण निष्प्राण वस्तु पूर्णतः निरुपयोगी ही नहीं होती, वरन् नष्ट भी हो जाती है। प्राण के अभाव में कोई वस्तु अपना स्वरूप धारण किए नहीं रह सकती, उसके जो स्वाभाविक गुण हैं वे भी स्थिर नहीं रहते।

प्राण को एक प्रकार की सजीव विद्युत्-शक्ति कह सकते हैं, जो समस्त संसार में वायु, आकाश, गर्मी एवं ईथर की तरह समाई हुई है। यह तत्त्व जिस प्राणी में जितना अधिक होता है, वह उतना ही स्फूर्तिवान् तेजस्वी, साहसी एवं सुदृढ़ दिखाई देता है। शरीर में व्याप्त इसी तत्त्व को जीवनीशक्ति एवं 'ओज' कहते हैं और मन में व्यक्त होने पर यही तत्त्व प्रतिभा एवं तेज कहलाता है। वीर्य में यही विद्युत् शक्ति अधिक मात्रा में भरी रहने से ब्रह्मचारी लोग मनस्वी

एवं तेजस्वी बनते हैं। इसी के अभाव से चमड़ी गोरी होने पर भी, नख-शिख का ढाँचा सुंदर दीखने पर भी मनुष्य, निस्तेज, उदास, मुरझाया हुआ और लुंज-पुंज सरीखा लगता है। भीतरी तेजस्विता के अभाव से चमड़ी की सुंदरता निर्जीव जैसी लगती है। मन को लुभाने वाले सौंदर्य में जो तेजस्विता एवं मृदुलता बिखरी होती है, वह और कुछ नहीं प्राण का ही उभार है। वृक्ष, वनस्पतियों, पुष्पों से लेकर शिशु और शावकों-किशोरियों में जो कुछ आह्लाद दीख पड़ता है, वह सब प्राण का ही प्रताप है। यह शक्ति कहीं चेहरे के सौंदर्य में, कहीं वाणी की मृदुलता में, कहीं प्रतिभा में, कहीं बुद्धिमत्ता में, कहीं कला-कौशल में, कहीं भक्ति में, कहीं अन्य किसी रूप में देखी जाती है।

दुर्गा के रूप में अध्यात्म जगत् में इसी तत्त्व को पूजा जाता है। शक्ति यही है। दुर्गा सप्तशती में "या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण तिष्ठति" आदि श्लोकों में अनेक रूप से, उसी तत्त्व के लिए "नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोनमः" कहकर अभिवंदन किया गया है। विजय दशमी की शक्ति पूजा के रूप में हम इस प्राणतत्त्व का ही आह्वान और अभिनंदन करते हैं। विश्व सृष्टि में समाया हुआ यह प्राण जब दुर्बल पड़ जाता है, तो हीनता का युग आ जाता है, सब जीव-जंतु दुर्बलकाय, अल्पजीवी, मंदबुद्धि और हीन भावनाओं वाले हो जाते हैं। किंतु जब इसकी प्रौढ़ता रहती है तो इस सृष्टि में सब कुछ उत्कृष्ट रहता है। सत्युग और कलियुग का भेद इस विश्वप्राण की प्रौढ़ता और वृद्धता पर निर्भर है। जब सृष्टि में से यह प्राण होते-होते मरण की, परिसमाप्ति की स्थिति में पहुँचता है, तो प्रलय की घड़ी प्रस्तुत हो जाती है। परमाणुओं के एक-दूसरे के साथ संबंध रखने वाला चुंबकत्व-प्राण ही नहीं रहा तो वे सब बिखरकर, धूलि की तरह छितरा जाते हैं। जितने स्वरूप बने हुए थे, वे सब नष्ट हो जाते हैं। इसी का नाम प्रलय है। जब दीर्घकाल के पश्चात् यह प्राण चिर निद्रा में से जागकर नवजीवन ग्रहण करता है तो सृष्टि उत्पादन की प्रक्रिया पुनः आंरभ हो जाती है। जीवात्माओं को इस

परा और अपरा प्रकृति का आवरण धारण करके कोई स्वरूप ग्रहण करने का अवसर मिलता है और वे पुनः जीव-जंतुओं के रूप में चलते-फिरते दृष्टिगोचर होने लगते हैं।

यह प्राणत्व किन्हीं प्राणियों को पूर्व संग्रहीत संस्कार एवं पुण्यों के कारण जन्मजात रूप से अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। इसे उनका सौभाग्य ही कहना चाहिए, पर जिन्हें वह न्यून मात्रा में प्राप्त है उन्हें निराश होने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। प्रयत्नों के द्वारा इस तत्त्व को कोई भी—अभीष्ट आकांक्षा के अनुरूप अपने अंदर धारण कर सकता है। जिसमें कम है—वह उसकी पूर्ति, इस विश्वव्यापी, प्राणतत्त्व में से बिना किसी रोक-टोक के चाहे कितनी मात्रा में लेकर कर सकता है। जिनमें पर्याप्त मात्रा है, वह और भी अधिक मात्रा में उसे ग्रहण करके अपनी तेजस्विता और प्रतिभा में अभीष्ट अभिवृद्धि कर सकते हैं।

भारतीय योगियों ने इस संबंध में अद्‌भुत प्रयोग किए हैं। योग विज्ञान के सारे चमत्कार इस प्राणतत्त्व के ही क्रिया कलाप हैं। यह सृष्टि परा और अपरा प्रकृति के दो भागों में विभक्त है। एक को जड़ दूसरे को चेतन कहते हैं। जड़ के सूक्ष्म अंश को परमाणु-जिसके संयोग से स्थूल अवयवों का निर्माण होता है, चेतन को प्राण कहते हैं, जिससे सूक्ष्म शरीर बनता है। शरीर में यह प्राण ही सूक्ष्म शरीर के रूप में विद्यमान रहता है, इसी से उसमें गति और सक्रियता उत्पन्न होती है, जिससे प्राणि जगत् हलचल करता हुआ दिखाई देता है। उसके अभाव में इस बौद्धिक चेतना के दर्शन संभव नहीं हो सकते हैं। प्राण की प्रशस्ति में शास्त्रकारों ने तरह-तरह की व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं।

शांखायन (५.२) तथा कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् (३.२) का मत है—

प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा। तं मामायुरमृत मित्युपास्स्वाऽऽयुः प्राणः प्राणोवा आयुः। प्राण एवामृतम् यावद्धयस्मिञ्छरीरे प्राणोऽसीत तावदायुः। प्राणेन हि एवामुष्मिंल्लोकेऽमृतत्वमाप्नोति।

मैं ही प्राण रूप प्रज्ञा हूँ। मुझे ही आयु, अमृत जानकर उपासना करो, जब तक प्राण हैं तभी तक जीवन है। इस लोक में अमृतत्व प्राप्ति का आधार प्राण ही है।

प्राण के आग्नेय स्वरूप को इस तरह निरूपित किया है—

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष-पर्जन्यो मघवानेष वायुः।
एष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत्।।

—प्रश्नोपनिषद् २।५

यह प्राण ही शरीर में अग्नि रूप धारण करके तपता है। यही सूर्य, इंद्र, मेघ, वायु, पृथ्वी तथा भूत समुदाय है। सत्-असत् तथा अमृत स्वरूप ब्रह्म भी यही है।

असद्वा इदमग्र आसीत्। तदाहुः किं तदसदासीदित्यृषयो वा व। तेऽग्रेसदासीत् तदाहुः के तऽऋषय इति प्राणा वा ऋषयः। —शतपथ, ६.१.१.१

सृष्टि से पहले 'असत्' था। यह असत् क्या ? उत्तर में कहा गया वे ऋषि थे ? वे ऋषि क्या थे ?—तब उत्तर में कहा गया—वे प्राण थे। प्राण ही ऋषि हैं।

यहाँ असत् शब्द अभाव के अर्थ में नहीं—अव्यक्त के रूप में प्रयुक्त हुआ है। प्राण सृष्टि से पूर्व भी विद्यमान था। जब दृश्य पदार्थ विनिर्मित हुए तो उनमें प्राण को हलचल करता हुआ देखा गया। यह देखना ही 'व्यक्त' है।

प्राण को ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कहा गया है—

प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च। —छांदोग्य ५, १, १

सृष्टि से पूर्व उसकी सत्ता विद्यमान होने से वह ज्येष्ठ है। श्रेष्ठ इसलिए कि समस्त पदार्थों और शरीरों में, उसी की विभिन्न हलचलें दृष्टिगोचर हो रही हैं। वस्तुतः जीवन के अर्थ में ही प्राण का प्रयोग होता रहा है।

यस्मात्कस्माच्चाङ्गात्प्राण उत्क्रामति तदेव तच्छुष्यति।

—बृहदारण्य० १.३.१६

जिस किसी अंग से प्राण निकल जाता है, वह सूख जाता है।

दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः।

—बृहदारण्य० ३.६.४

मनुष्य में रहने वाली दस इंद्रियाँ और ग्यारहवाँ मन यह सब प्राण हैं।

इतने पर भी उसे वायु, इंद्रियाँ या मन नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः वह इन सबके भीतर काम करने वाली जीवनी शक्ति है।

न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्। —ब्रह्मसूत्र २-४.६

यह प्राण वायु या इंद्रियाँ नहीं है। शास्त्रों में उसका उपदेश भिन्न रूप से किया गया है। प्रश्नोपनिषद् में यह तथ्य और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है—

तान्वरिष्ठः प्राण उवाच मा मोहमापद्यथा। अहमेवैतत्पंचधात्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामि।

—प्रश्न० २-३

उस वरिष्ठ प्राण ने मन और इंद्रियों से कहा—तुम मोह में मत पड़ो। मैं ही पाँच रूप बनाकर इस शरीर को धारण किए हुए हूँ।

न वायुः प्राणो नापि करणव्यापारः।

—ब्रह्मसूत्र शंकरभाष्य २-४-६

यह प्राण, वायु नहीं है और न वह इंद्रियों का व्यापार ही है।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेंद्रियाणि च।

—मुंडक २, १, ३

यह प्राण मन और इंद्रियों से भिन्न है।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्। —अथर्व० ११.६.१

अर्थात्—उस प्राण को नमस्कार जिसके वश में यह सब कुछ है। जो सब प्राणियों का अधिष्ठाता है। जो सबमें समाया है, जिसमें सब समाए हैं।

संस्कृत में प्राण शब्द की व्युत्पत्ति 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'अन्' धातु से होती है। 'अन्' धातु (प्राणने) जीवनी शक्ति-चेतना बोधक है। इस प्रकार प्राण शब्द का अर्थ चेतना शक्ति होता है। जीवधारियों को प्राणी इसीलिए कहते हैं। प्राण और जीवन दोनों एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। प्राण आत्मा का गुण है। यह परम आत्मा से, पर ब्रह्म से निःसृत होता है। आत्मा परमात्मा का ही एक अविच्छिन्न घटक है। वह अंश रूप है तो भी उसमें मूल सत्ताधीश के सारे गुण विद्यमान हैं। व्यक्तिगत प्राण धारण करने वाला प्राणी, जब सुविकसित होता है तो वह भी बूँद के समुद्र में पड़ने पर सुविस्तृत होने की तरह ही व्यापक बन जाता है।

जड़ जगत् में शक्ति तरंगों के रूप में संव्याप्त, सक्रियता के रूप में प्राण शक्ति का परिचय दिया जा सकता है और चेतन जगत् में उसे विचारणा एवं संवेदना कहा जा सकता है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया के रूप में यह जीवधारियों में काम करती है। जीवंत प्राणी इसी के सहारे जीवित रहते हैं। इस जीवनी शक्ति की जितनी मात्रा जिसे मिल जाती है, वह उतना ही अधिक प्राणवान् कहा जाता है। चेतना की विभु सत्ता समस्त विश्व ब्रह्मांड में संव्याप्त है। चेतना प्राण कहलाती है। उसी का अमुक अंश प्रयत्नपूर्वक अपने में धारण करने वाला प्राणी—प्राणवान एवं महाप्राण बनता है। यह प्राण जड़ पदार्थों में सक्रियता के और चेतन प्राणियों में सजगता के रूप में दृष्टिगोचर होता है। जड़-चेतन जगत् की सर्वोपरि शक्ति होने के कारण उसे ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ कहा गया है।

प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च। —छांदोग्य ५।१।१

यह तत्त्व अनादि और अनंत है। इसी में सृष्टि बार-बार विलीन और उत्पन्न होती रहती है। सृष्टि से पूर्व यहाँ क्या था ? इसका उत्तर देते हुए शास्त्र कहता है—

स प्राणमसृजत, प्राणाच्छ्रद्धां, खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रिय मनोऽन्नम्। —प्रश्नो० ६.४

अर्थात् उस ब्रह्म ने प्राण उत्पन्न किया। प्राण से श्रद्धा, बुद्धि, मन एवं आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी पंचतत्त्वों की उत्पत्ति हुई। तब अन्न उत्पन्न हुआ।

वैदिक विवेचना में प्राण के साथ 'वायु' का विशेषण भी लगा है। उसे कितने ही स्थानों पर प्राण वायु कहा गया है। इसका तात्पर्य ऑक्सीजन, नाइट्रोजन आदि वायु विकारों से नहीं वरन् उस प्रवाह से है, जिसकी 'गतिशील विद्युत-तरंगों के रूप में भौतिक विज्ञानी चर्चा करते रहते हैं। अणु विकरण-ताप-ध्वनि आदि की शक्तिधाराओं के मूल में संव्याप्त सत्ता भी उसे कहा जा सकता है। यदि उसके अध्यात्मस्वरूप का विवेचन किया जाए तो अंग्रेजी के लेटेंट लाइट-डिवाइन लाइट आदि शब्दों से संगति बैठती है, जिसमें उसके दिव्य प्रकाश के समतुल्य होने का संकेत मिलता है।

स्वामी विवेकानंद ने प्राण की विवेचना 'साइकिक फोर्स' के रूप में की है। इसका मोटा अर्थ 'मानसिक शक्ति' हुआ। मोटे रूप से तो यह कोई मस्तिष्कीय हलचल हुई। पर प्राण तो विश्वव्यापी है। यदि समष्टि को मन की शक्ति कहें या सर्वव्यापी चेतना शक्ति का नाम दें, तो ही यह अर्थ ठीक बैठ सकता है। व्यक्तिगत मस्तिष्कों की प्रथम मानसिक शक्ति की क्षमता प्राण के रूप में नहीं हो सकती। संभवतः स्वामी जी का संकेत समष्टि मन की सर्वव्यापी क्षमता की ओर ही रहा होगा।

मानसिक एवं शारीरिक क्षमताओं के रूप में प्राण शक्ति के प्रकट होने का, प्रखर होने का परिचय प्राप्त किया जा सकता है, पर वह मूलतः इन सब जाने हुए विवरणों से कहीं अधिक सूक्ष्म है।

वैदिक साहित्य में प्राण वायु विशेषण भी लगा है और उसे 'प्राण वायु' कहा गया है। उनका तात्पर्य ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, आदि वायु विकारों से नहीं, वरन् उस प्रवाह से है, जिसकी गतिशील विद्युत् तरंगों के रूप में भौतिक विज्ञानी चर्चा करते हैं। अणु विकरण, ताप, प्रकाश आदि की शक्तिधाराओं के मूल में संव्याप्त सत्ता से कहा जा सकता है।

❑ ❑

प्राण शक्ति के प्रत्यक्ष प्रमाण

✳

मनुष्य शरीर एक प्रकार का चलता-फिरता बिजलीघर है। उसी के आधार पर शरीर के कारखाने में लगे हुए अगणित कल- पुर्जे काम करते हैं और मस्तिष्क में जुड़े हुए एक से एक बढ़कर विलक्षण कंप्यूटरों का सूत्र-संचालन होता है। विशालकाय यंत्रों का क्रियाकलाप शक्तिशाली इंजनों या मोटरों पर निर्भर रहता है। मानवी काया का विस्तार भले ही न हो, पर उसकी संरचना एवं क्रिया पद्धति असाधारण रूप से जटिल तथा संवेदनशील है। इसे निरंतर संचालित रखने के लिए स्वभावतः उच्चकोटि की शक्ति का प्रयोग होता है। इसकी पर्याप्त मात्रा जन्मजात रूप से हमें उपलब्ध है और उसके उपयोग से जीवन की आवश्यक गतिविधियों का स्वसंचालित पद्धति से गतिशील रहना संभव होता है।

प्राणिज विद्युत् शक्ति के उत्पादन के लिए मानवी शरीर में समुचित साधन और आधार विद्यमान हैं। डायनेमो, आरमेचर, मैगनेट, क्वायल जैसे सभी उपकरण, उसमें अपने ढंग से विद्यमान हैं। अंग-प्रत्यंगों में वे रासायनिक पदार्थ भरे पड़े हैं, जिनसे बिजली उत्पन्न होती है। रक्ताभिसरण की प्रक्रिया इस मोटर को घुमाती है और उस आधार पर यह विद्युत् उत्पादन अनवरत् रूप से जारी रहता है।

कोशिकाओं की आंतरिक संरचना में एक महत्त्वपूर्ण आधार है—माइटोकोंड्रिया। इसे दूसरे शब्दों में कोशिका का पावर हाउस विद्युत् भंडार कह सकते हैं। भोजन, रक्त, मांस, अस्थि आदि से आगे बढ़ते-बढ़ते अंततः इसी संस्थान में जाकर ऊर्जा का रूप लेता है। यह ऊर्जा ही कोशिका को सक्रिय रखती है और उसकी सामूहिक सक्रिया जीव-संचालक के रूप में दृष्टिगोचर होती है। इस ऊर्जा को लघुतम प्राणांश कह सकते हैं। काय-कलेवर में इसका एकत्रीकरण महाप्राण कहलाता है और उसी की ब्रह्मांडव्यापी चेतना

विश्वप्राण या विराट् प्राण के नाम से जानी जाती है। प्राणांश की लघुतम ऊर्जा इकाई कोशिका के अंतर्गत ठीक उसी रूप में विद्यमान है, जिसमें कि विराट् प्राण गतिशील है। बिंदु-सिंधु जैसा अंतर इन दोनों के बीच रहते हुए भी वस्तुतः वे दोनों अन्योन्याश्रित हैं। कोशिका के अंतर्गत प्राणांश के घटक परस्पर संयुक्त न हों तो महाप्राण का अस्तित्व न बने। इसी प्रकार यदि विराट् प्राण की सत्ता न हो तो भोजन पाचन आदि का आधार न बने और वह लघु प्राप्त जैसी विद्युत् धारा का संचार भी संभव न हो।

बिजली से हीटर, कूलर, पंखे आदि चलते हैं; इससे उसकी उपयोगिता समझ में आती है किंतु कभी-कभी इस प्रक्रिया में व्यतिरेक भी होते देखा जा सकता है। भौतिक बिजली जीव विद्युत तो नहीं बन सकती, पर जीव विद्युत् के साथ भौतिक बिजली का सम्मिश्रण बन सकता है। ऐसी विचित्र घटनाएँ कई बार देखने में आई हैं, जिनसे मानवी शरीरों को एक छोटे जनरेटर या डायनमो की तरह काम करते देखा गया है।

कई उदाहरण ऐसे देखे गए हैं, जो यह बताते हैं कि इस शरीर में असाधारण विद्युत्-प्रवाह का संचार हो रहा है। यों यह विद्युत् शक्ति हर किसी में होती है, पर वह अपनी मर्यादा में रहती है और अभीष्ट प्रयोजन में इस प्रकार निरत रहती है कि अनावश्यक स्तर पर उभर पड़ने के कारण, उसका अपव्यय न होने लगे। छूने से किसी शरीर में बिजली जैसे झटके प्रतीत न होते हों, तो भी यह नहीं समझना चाहिए कि उस शक्ति का किसी प्रकार अभाव है। हर किसी में पाई जाने वाली मानवी विद्युत्, जिसे अध्यात्म की भाषा में प्राण कहते हैं, कभी-कभी किसी के प्रतिबंध कलेवर भेदकर बाहर निकल आती है, तब उसका स्पर्श भी भौतिक बिजली जैसा ही बन जाता है।

आयरलैंड की एक युवती जे० स्मिथ के शरीर में इतनी बिजली थी कि उसे छूते ही झटका लगता था। डॉ० एस० क्राफ्ट के तत्वावधान में इस पर काफी खोज की गई, उसमें कोई छल

नहीं था। हर दृष्टि से यह परख लिया गया कि वह शरीरगत बिजली ही है, पर इस अतिरिक्त उपलब्धि का आधार क्या है ? इसका कारण नहीं समझा जा सका।

बर्लिन (जर्मनी) के निकट एक छोटे-से गाँव मिसौरी सिडैलिया में एक लड़की जब १४ वर्ष की हुई, तो उसके शरीर में अचानक विद्युत्-प्रवाह का संचार आरंभ हो गया। इस लड़की का नाम था—जेनी मार्गन। उसके शरीर की स्थिति एक शक्तिशाली बैटरी जैसी हो गई।

एक दिन वह हेंडपंप चलाकर पानी निकालने लगी तो उसके स्पर्श के स्थान पर आग की चिनगारियाँ छूटने लगीं। लड़की डर गई और घर वालों का सारा विवरण सुनाया। पहले तो समझा गया कि पंप में कहीं से करेंट आ गया होगा, पर जब जाँच की गई तो पता चला कि लड़की का शरीर ही बिजली से भरा हुआ है। वह जिसे छूती उसी को झटका लगता। वह एक प्रकार से अस्पर्श्य बन गई। चिकित्सकों और वैज्ञानिकों ने इस जंजाल से उसे छुड़ाने के लिए अपने-अपने ढंग से कारण तलाश करने और उपचार ढूँढ़ने में शक्ति भर प्रयत्न किया पर कुछ सफलता न मिली। कई वर्ष यह स्थिति रहने के बाद वह प्रवाह स्वयं ही घटना शुरू हुआ और तरुणी होने तक वह व्यथा अपने आप टल गई। तब कहीं उसकी जान में जान आई और सामान्य जीवन बिता सकने योग्य बनी।

सोसाइटी ऑफ फिजीकल रिसर्च की रिपोर्ट के अनुसार केवल अमेरिका में ही २० से अधिक बिजली के आदमी पाए गए हैं। तलाश करने पर वे संसार के अन्य देशों में भी मिल सकते हैं। कोलराडो निवासी डबल्यू० पी० जोन्स और उनके सहयोगी नार्मन लोग ने इस संदर्भ में लंबी शोधें की हैं और इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि इसमें कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है। सामान्य-सा शारीरिक व्यतिक्रम है। शरीर की कोशाओं के नाभिकों की बिजली-आवरण ढीले पड़ने पर 'लीक' करने लगती है। तब शरीर की बाहरी परतों पर उसका प्रवाह दौड़ने लगता है। वस्तुतः नाभिकों

में अनंत विद्युत् शक्ति का भंडार तो पहले से ही विद्यमान है। इन शोधकर्ताओं का कथन है कि स्थान और उपयोग की भिन्नता से प्राणी विद्युत् और पदार्थ विद्युत् के दो भेद हो जरूर गये हैं, पर तात्विक दृष्टि से उनमें मूलभूत एकता ही पाई जाती है।

शोधकर्ता जोन्स स्वयं भी एक विद्युत् मानव थे। उन्होंने नंगे पैरों धरती पर चलकर भू-गर्भ की अनेको धातु खदानों का पता लगाने से भारी ख्याति प्राप्त की थी। उनके स्पर्श से धातुओं से बनी वस्तुएँ, जादूगरों के खिलौनों की तरह उछलने-खिसकने की विचित्र हलचलें करने लगती थी। छूते ही बच्चे झटका खाकर चिल्लाने लगते थे।

अमेरिका के मोंटाना राज्य के मेडालिया कस्बे की जेनी मोरन नामक लड़की एक चलती-फिरती बैटरी थी। जो उसे छूता वही झटका खाता। अँधेरे में उसका शरीर चमकता था। अपने प्रकाश से वह घोर अँधेरे में भी मजे के साथ यात्रा कर लेती थी। उसके साथ चलने वाले किसी जीवित लालटेन के साथ चलने का अनुभव करते थे। उसके शरीर के स्पर्श से १०० वाट तक का बल्ब जल उठता था। यह लड़की ३० वर्ष की आयु तक जीवित रही और अस्पर्श्य बनी एकांत कोठरी में दिन गुजारती रही।

कनाडा के ओंटोरियो क्षेत्र वोंडन गाँव में जन्मी एक लड़की १७ वर्ष तक जीवित रही। धातु का सामान उसके शरीर से चिपक जाता था। इसलिए उसके भोजन पात्र तक लकड़ी या काँच के रखे जाते थे।

टोकियो (जापान) की नेशनल मेडिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट ने इस तरह की घटनाओं पर व्यापक अनुसंधान किया और कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं। इस संस्था के वैज्ञानिकों का कथन है कि आमतौर पर एक बल्ब २५ वोल्ट से ६० वोल्ट का विद्युत् बल्ब जलाने जितनी विद्युत् की न्यूनाधिक मात्रा प्रत्येक शरीर में पाई जाती है। ट्रांजिस्टर के "नोब" को हाथ की उँगलियों का स्पर्श देकर बजाएँ तो ध्वनि की तीव्रता बढ़ जाती है, उँगलियाँ हटाने पर

आवाज कुछ क्षीण हो जाती है, यह इसी तथ्य का प्रमाण है। विद्युत् चिनगारियों के मामले आए हैं, उनमें भी विद्युत् आवेश अधिकांश उँगलियों में तीव्र पाया गया है, पर असीमित-शक्ति का कोई कारण खोजा नहीं जा सका।

भारतवर्ष की तरह जापान भी धार्मिक आस्थाओं, योग साधनाओं का केंद्र है। सामान्य भारतीय की तरह उनमें भी आध्यात्मिक अभिरुचि स्वाभाविक है। एक घटना के माध्यम से जापानी वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकालने का भी प्रयास किया है कि शरीर में विद्युत् की उपस्थिति का कारण तो ज्ञात नहीं किंतु जिनमें भी यह असामान्य स्थिति पाई गई, उनके मनोविश्लेषण से पता चलता है कि ऐसे व्यक्ति या तो जन्म-जात आध्यात्मिक प्रकृति के थे या कालांतर में उनमें विलक्षण अतींद्रिय क्षमताओं का भी विकास हो जाता है। इस संदर्भ में जेनेवा की एक युवती जेनेट डरनी का उदाहरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जेनेट १६४८ में जब वह १६-१७ वर्षीय युवती थी तब किसी रोग से पीड़ित हुई। उनका वजन बहुत अधिक गिर गया। अब तक उनके शरीर में असाधारण विद्युत् भार था वह काफी मंद पड़ गया था, किसी धातु की वस्तु का स्पर्श करने पर अब भी उनकी उँगलियों से चिनगारियाँ फूट पड़ती थीं। अब वह अनायास ही ध्यानस्थ हो जाने लगीं। ध्यान की इस अवस्था में उन्हें विलक्षण अनुभूतियाँ होतीं। वह ऐसी घटनाओं का पूर्व उल्लेख कर देतीं, जो कालांतर में सचमुच घटित होतीं। व्यक्तियों के बारे में वह जो कुछ बता देतीं वह लगभग वैसा ही सत्य हो जाता। वे सैकड़ों मील दूर की वस्तुओं का विवरण नितांत सत्य रूप में इस तरह वर्णन कर सकती थीं, मानो वह वस्तु प्रत्यक्ष ही उनके सामने है। पता लगाने पर उस स्थान या वस्तु की बताई हुई सारी बातें सत्य सिद्ध होतीं। काफी समय तक वैज्ञानिकों ने जेनेट की इन क्षमताओं पर अनुसंधान किए और उन्हें सत्य पाया, किंतु वे कोई वैज्ञानिक

निरूपण नहीं कर सके कि इस अचानक प्रस्फुटित हो उठने वाली आग या विद्युत् का कारण क्या है ?

रासायनिक विश्लेषण से भले ही यह बात सिद्ध न हो पर जो वस्तु अस्तित्व में है, वह किसी न किसी रूप में कभी न कभी व्यक्त होती रहती है। लंदन के सुप्रसिद्ध स्नायु रोग विशेषज्ञ डॉ० जॉन ऐश क्राफ्ट को जब यह बताया गया कि उनके नगर में ही एक ११ वर्षीय किशोरी कन्या जेनी मार्गन के शरीर में असाधारण विद्युत् शक्ति है और कोई व्यक्ति उसका स्पर्श नहीं कर सकता, तो उनको एकाएक विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि हाड़-माँस के शरीर में अग्नि जैसा कोई तेजस् तत्त्व और विद्युत जैसी क्षमतावान शक्ति भी उपलब्ध हो सकती है। उसके परीक्षण का निश्चय कर वे जेनी मार्गन को देखने उसके घर पर जा पहुँचे। बड़े आत्मविश्वास के साथ जेनी से हाथ मिलाने के लिए उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाया। जेनी बचना चाहती थी, किंतु डॉक्टर ने स्वयं आगे बढ़कर उसके हाथ का स्पर्श किया। उसके बाद जो घटना घटी वह डॉ० ऐश के लिए बिलकुल अनहोनी और विलक्षण थी। एक झटके के साथ वे दूर फर्श पर जा गिरे, काफी देर बाद जब होश आया तो उन्होंने अपने आपको एक अन्य डॉक्टर द्वारा उपचार करते हुए पाया। उन्होंने स्वीकार किया कि इस लड़की के शरीर में हजारों वोल्ट विद्युत् प्रभार से कम शक्ति नहीं है। सामान्य विद्युत् धारा से साधारण झटका लग सकता है, किंतु १५० पौंड के आदमी को दूर पटक दे इतनी असामान्य शक्ति इतने से कम विद्युत् भार में नहीं हो सकती।

वास्तव में बात थी भी ऐसी ही। जेनी मार्गन जिस किसी व्यक्ति के संपर्क में आई, उन सबने यही अनुभव दोहराया। एक दिन जेनी अपने दरवाजे पर खड़ी थी। उधर से एक ताले बेचने वाला निकला। वह जेनी से ताला खरीदने का आग्रह करने लगा। जेनी के मना करते-करते, उसने सस्ते ताले का प्रलोभन देकर ताला उसके हाथ में रख दिया। उसी के साथ उसके हाथ का जेनी

के हाथ से स्पर्श हो गया, फिर तो जो हालत बनी उसे देखने के लिए भीड़ इकट्ठी हो गई। झटका खाकर ताले वाला पीछे जा गिरा। बड़ी देर में उसे होश आया तो वह अपना सामान समेटकर भागते ही बना। इस तरह की ढेरों घटनाएँ घट चुकने के बाद ही डॉ० ऐश ने जेनी के अध्ययन का निश्चय किया था, किंतु शरीर में उच्च विद्युत् वोल्टेज होने के कारण का वे भी कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सके।

बुरी हालत तो बीती एक युवक पर, जो जेनी को प्यार की दृष्टि से देखता था। जेनी जो अब तक अपने इस असामान्य व्यक्तित्व से ऊब चुकी थी। किसी भावनात्मक संरक्षण की तलाश में थी। इस युवक को पाकर गद्‌गद हो उठी, किंतु भयवश स्नेह सूत्र भावनाओं तक ही जुड़े थे। शरीर स्पर्श से दोनों ही कतराते आ रहे थे। एक दिन युवक ने जेनी को एक ओपेरा में काफी की दावत दी। काफी पीकर जेनी जैसे ही उठी, फर्श पर पैर फिसल जाने से वह गिर पड़ी। युवक उसे बचाने दौड़ा, किंतु अभी वह जेनी को समेट भी नहीं पाया था कि स्वयं भी पछाड़ खाकर एक मेज पर जा गिरा, इससे वहाँ न केवल हड़कंप मच गई, अपितु उस पर एक साथ कई गर्म प्याले लुढ़क गये, जिससे वह जल भी गया। काफी उपचार के बाद बेचारा घर तक जाने योग्य हो पाया। ओपेरा में उपस्थित सैकड़ों लोगों के लिए वह विलक्षण दृश्य था, जिससे जेनी की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई, पर उस युवक ने फिर कभी मुड़कर भी उसे नहीं देखा। देखा वैज्ञानिकों ने, पर हुई उनकी भी दुर्गति। इस विद्युत् भार का कोई कारण किसी की समझ में नहीं आया। सन् १९५० तक जेनी जीवित बिजली घर रही। उसके बाद अपने आप ही उसकी यह क्षमता विलुप्त हो गई।

चिकित्सा इतिहास में ऐसी ही एक और घटना अंतरियो क्षेत्र के बोंडन की है। वहाँ एक १७ वर्षीय लड़की कैरोलिन क्लेअर अचानक बीमार पड़ी। डेढ़ वर्ष तक चारपाई पकड़े रहने के कारण उसका १३० पौंड वजन घटकर ६० पौंड रह गया। जब उस

बीमारी से पीछा छूटा तो एक नई बीमारी और लग गई। उसके शरीर में चुंबकत्व से काफी ऊँचे वोल्टेज की बिजली पैदा हो गई। जो छूता वही विद्युत् आघात का अनुभव करता। धातु की बनी कोई वस्तु वह छूती तो वह हाथ से चिपक जाती। अंतरियों मेडीकल ऐसोसिऐशन ने इसकी विधिवत् जाँच की, पर रिपोर्ट में किसी कारण का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया जा सका—केवल अनुमान और संभावनाओं के आधार पर ही कुछ चर्चा की गई। कुछ वर्ष बाद उसकी भी यह विलक्षणता घटने लगी और धीरे-धीरे समाप्त हो गई।

एक तीसरी घटना सोलह वर्षीय लुई हेवर्गर की है। इस लड़के में शक्तिशाली चुंबक पाया गया। वह जिन धातु-पदार्थों को छूता, वे उससे चिपक जाते और किसी दूसरे द्वारा बलपूर्वक छुड़ाए जाने पर ही छूटते। मेरीलैंड कॉलेज ऑफ फार्मेसी के तत्वावधान में इस लड़के के संबंध में भी बहुत दिन तक खोजबीन की गई। पर निश्चित् निष्कर्ष उसके संबंध में भी व्यक्त न किया जा सका।

एक और घटना मिसौरी के निकट जापलिन नगर की है। यहाँ एक व्यक्ति था—फ्रैंक मैक किस्टी। उसके शरीर में प्रातः काल तेज बिजली रहती थी, पर जैसे-जैसे दिन चढ़ता, वह शक्ति घटती चली जाती। जाड़े के दिनों में तो वह इतनी बढ़ जाती थी कि बेचारे को चलने-फिरने में भी कठिनाई अनुभव होती थी।

फ्रांस के मेडीकल टाइम्स एंड गजट में एक ऐसे बच्चे की डॉक्टरी रिपोर्ट छपी थी, जिसके शरीर से झटका देने जितनी बिजली प्रवाहित होती थी। लियोंस नगर में उत्पन्न हुआ यह बच्चा १० महीने जिया, उसे इतने दिनों बहुत सावधानी से ही जिंदा रखा जा सका, क्योंकि उसे छूते ही जमीन पर पटक देने वाला झटका लगता था। लकड़ी के तख्ते पर खड़े होकर तथा बिजली से प्रभावित न होने वाली वस्तुओं के सहारे ही उसके नित्य कर्म कराए जाते थे। उसके स्पर्श में आने वाले सभी उपकरण लकड़ी, काँच आदि के थे और कपड़े रबड़ के पहनाए गए थे। जब वह मरा तो

१० सेकिंड तक उसके शरीर से हल्की नीली प्रकाश किरणें निकलती देखी गईं।

फ्रांस के जोलिया क्षेत्र में सोंदरवा कस्बे में जन्मे एक ऐसे बालक की रिपोर्ट स्वास्थ्य विभाग ने नोट की है, जिसके शरीर से बिजली की तरंगें उठती थीं। जब वह मरने लगा तो डॉक्टरों ने प्रकाश की तीव्र किरणें निकलती और अंततः मंद होकर समाप्त होते देखा था।

आस्ट्रेलिया से एक बाईस वर्षीय युवक न्यूयार्क में इलाज कराने के लिए लाया गया था। उसके शरीर की स्थिति बिजली की बैटरी जैसी थी। छूते ही उसका चुंबकीय प्रभाव स्पष्ट अनुभव होता था। जब वह बिजली मंदी पड़ जाती, तो वह बेचैनी अनुभव करता। जिन चीजों में फास्फोरस अधिक होता उन मछली, सोव आदि पदार्थों को ही वह रुचिपूर्वक खाता था, सामान्य लोगों का आहार तो वह मजबूरी में ही करता था।

मास्को निवासी कुमारी माइखेलोवा रूसी वैज्ञानिकों के लिए एक दिलचस्प शोध का विषय रही है। वह अपने दृष्टिपात से चलती घड़ियाँ बंद कर देती थी अथवा सुइयाँ आगे-पीछे घुमा देती थी। इसके करतबों की फिल्म बनाकर कितनी ही प्रयोगशालाओं में भेजी गई ताकि अन्यत्र भी उस विशेषता के संबंध में अन्वेषण कार्य चलता रह सके। वैज्ञानिकों ने इसे मस्तष्कीय विद्युत् की चुंबकीय शक्ति इलेक्ट्रो मैगनेटिक-फोर्स की विद्यमानता निरूपित की है। वे कहते हैं, यह शक्ति हर मनुष्य में मौजूद है। परिस्थितिवश वह किसी में भी अनायास ही प्रकट हो सकती है और प्रयत्नपूर्वक उसे बढ़ाया भी जा सकता है। रूसी वैज्ञानिक लाखसोव ने हर मनुष्य के शरीर में निकलने वाले विद्युत् विकरणों को अंकित कर सकने वाला एक यंत्र ही बना डाला है।

यह उदाहरण इस बात के प्रतीक है कि मनुष्य शरीर प्राण विद्युत् का खजाना है। हम सामान्य आहार-विहार साधारण श्वास और निर्बल इच्छा शक्ति के कारण न तो उस शक्ति को जगा पाते

हैं न कोई विशिष्ट उपयोग ही कर पाते हैं, पर यह विद्युत् ही है, जिसे विभिन्न योग-साधनाओं द्वारा जागृत और नियंत्रित करके योगीजन अपने लोक और परलोक दोनों को समर्थ बनाते थे। वह कार्य करने में सफल होते थे, जो साधारण व्यक्तियों को कोई प्रताप और चमत्कार जैसा लगता है।

इस तरह अनायास ही जाग पड़ने वाली शरीर विद्युत् की तरह कई शरीरों में प्राण शक्ति अग्नि के रूप में प्रकट होने की भी घटनाएँ घटती हैं। वास्तव में सभी भौतिक शक्तियाँ परस्पर परिवर्तनीय हैं, अतएव दोनों तरह की घटनाएँ एक ही परिप्रेक्ष्य में आती हैं।

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति।

—प्रश्नोपनिषद् ४.३

इस ब्रह्मपुरी अर्थात् शरीर में प्राण ही कई तरह की अग्नियों के रूप में जलता है।

कई बार यह विद्युताग्नि इतनी प्रचंड रूप में जाग्रत हुई है कि वह स्वयं धारक को ही लील बैठी। चेम्सफोर्ड इंग्लैंड में २० सितंबर १९३८ को एक ऐसी घटना घटी। एक आलीशान होटल में आर्केस्ट्रा की मधुर ध्वनि गूँज रही थी। नृत्य चल रहा था, तभी एक महिला के शरीर से तेज नीली लौ फूटी। लोग भयवश एक ओर खड़े हो गये। लपटें देखते-देखते लाल ज्वाला हो गईं और कुछ ही क्षणों में युवती का सुंदर शरीर राख की ढेरी बन गया। ३१ मार्च, १९०८ को ह्विटले (इंगलैंड) में ही ऐसी एक और घटना घटी थी। जोनहार्ट नामक एक व्यक्ति बैठा कोई पुस्तक पढ़ रहा था, सामने कुर्सी पर उसकी बहन बैठी थी, एकाएक उसके शरीर से आग की लपटें निकलने लगीं। जोन ने बहन को तुरंत एक कंबल से ढका और दौड़ा डॉक्टर को बुलाने। १० मिनट में ही नीचे स्ट्रीट से डॉक्टर वहाँ पहुँचे किंतु उनके पहुँचने से पूर्व ही बहन, कुर्सी और कंबल सब एक राख की ढेरी में परिणत हो चुके थे।

अमेरिका में अब तक ऐसी २०० मौतें हो चुकी हैं। फ्लोरिडा का एक व्यक्ति सड़क पर जा रहा था कि एकाएक उसके शरीर से आग की नीली लपटें फूट पड़ी। सहयात्रियों में से एक ने उसके शरीर पर पानी की बाल्टी उड़ेल दी। आग थोड़ी देर के लिए शांत हो गई। जब तक डॉक्टर और गुप्तचर विभाग वहाँ पहुँचे, तब तक पानी सूख चुका था और सैकड़ों दर्शकों की उपस्थिति में ही आग की लपटें उठी और वह व्यक्ति वहीं जलकर ढेर हो गया। फ्लोरिडा के मेडिकल जनरल में छपे एक लेख में वैज्ञानिकों ने हैरानी प्रकट की कि मनुष्य शरीर में ६० प्रतिशत भाग जल होता है, उसे जलाने के लिए ५००० डिग्री फारेनहाइट की अग्नि चाहिए, वह एकाएक कैसे पैदा हो जाती है ? शरीर के "कोषों" (सेल्स) में अग्नि स्फुलिंग "प्रोटोप्लॉज्मा" में सन्निहित रहते हैं, पर वह इतने व्यवस्थित रहते हैं कि शरीर के जल जाने की आशंका नहीं रहती। प्रोटोप्लॉज्मा उच्च प्लॉज्मा में बदलने पर ही अग्नि बन सकती है। यह सब एकाएक कैसे हो सकता है ? वह वैज्ञानिकों की समझ में अब तक भी नहीं आया।

इस तरह झटका मारने जैसे स्तर की बिजली तो कभी-कभी किसी-किसी के शरीर में ही देखने को मिलती है, पर सामान्यतया वह हर मनुष्य में पाई जाती है और जीवन की विविध गतिविधियों के संचालन में सहायता करती है। इसके सदुपयोग एवं अभिवर्धन का विज्ञान यदि ठीक तरह समझा जा सके, तो मनुष्य परम तेजस्वी, मनस्वी एवं आत्मबल संपन्न बनकर सुविकसित जीवन जी सकता है।

सिर और नेत्रों में मानवी विद्युत् का सबसे अधिक अनुभव होता है। वाणी की मिठास, कड़क अथवा प्रभावी प्रामाणिकता में भी उसका अनुभव किया जा सकता है। तेजस्वी मनुष्य के विचार ही प्रखर नहीं होते, उसकी आँखें भी चमकती हैं और उनकी जीभ-अंतर में गहराई तक घुस जाने वाला विद्युत्-प्रवाह उत्पन्न करती है।

आत्मबल की साधना को प्रकारांतर से तेजस्विता की साधना ही कह सकते हैं।

मानवी विद्युत् के दो प्रवाह हैं—एक ऊर्ध्वगामी, दूसरा अधोगामी। ऊर्ध्वगामी विद्युत् मस्तिष्क में केंद्रित है। उस मर्मस्थल के प्रभाव से व्यक्तित्व निखरता और प्रतिभाशाली बनता है। बुद्धि कौशल, मनोबल के रूप में शौर्य, साहस और आदर्शवादी उत्कृष्टता के रूप में यही विद्युत् काम करती है। योगाभ्यास के, ज्ञान-साधना के समस्त प्रयोजन इस ऊर्ध्वगामी केंद्र द्वारा संपन्न होते हैं। स्वर्ग और मुक्ति का, ऋद्धियों और सिद्धियों का आधार इसी क्षेत्र की विद्युत् के साथ जुड़ा हुआ है। मनुष्य के चेहरे के इर्द-गिर्द छाए हुए तेजोवलय को, ओजस् को इस ऊर्ध्वगामी विद्युत् का ही प्रतीक समझना चाहिए।

अधोगामी विद्युत् जननेंद्रिय में केंद्रित रहती है। रति सुख का आनंद देती है और संतानोत्पादन की उपलब्धि प्रस्तुत करती है। विविध कला विनोदों का, हर्षोल्लासों का उद्भव यहीं होता है। ब्रह्मचर्य पालन करने के जो लाभ गिनाए जाते हैं, वे सब जननेंद्रिय में सन्निहित विद्युत् के ही चमत्कार हैं। आगे चलकर मूलाधार चक्र में अवस्थित कुंडलिनी शक्ति का जागरण करने से साधनारत मनुष्य अपने को ज्योतिर्मय तेज पुंज के रूप में परिणत कर सकते हैं।

ऊर्ध्वगामी और अधोगामी विद्युत्-प्रवाह यों उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव की तरह भिन्न प्रकृति के हैं और एक-दूसरे से दूर हैं, फिर भी वे सघनतापूर्वक मेरुदंड के माध्यम से परस्पर जुड़े हुए हैं। जननेंद्रिय की उत्तेजना से मस्तिष्क में संक्षोभ उत्पन्न होता है और उत्कृष्ट चिंतन से काम-विकारों का सहज शमन संभव हो जाता है। यदि यह उभय-पक्षीय शक्ति-प्रवाह ठीक तरह सँजोया, संभाला जा सके तो उसका प्रभाव व्यक्तित्व के समान विकास में चमत्कारी स्तर का देखा जा सकता है।

मानवी तत्त्व की व्याख्या, विवेचना अनेक आधारों पर की जाती है। अध्यात्म एवं तत्त्व दर्शन के आधार पर मनुष्य को ईश्वरीय सत्ता का प्रतिनिधि और अगणित दिव्य संभावनाओं का भंडागार माना गया है। भौतिक विश्लेषण के अनुसार वह रासायनिक पदार्थ और पंचतत्त्व समन्वय का एक हँसता-बोलता पादप है। विद्युत् विज्ञान के अनुसार उसे एक जीवित-जागृत बिजली घर भी कहा जा सकता है। रक्त संचार, श्वास-प्रश्वास, आकुंचन-प्रकुंचन जैसे क्रिया-कलाप पेंडुलम गति से स्वसंचालित रहते हैं और जीवनी शक्ति के नाम से पुकारी जाने वाली शक्ति की क्षतिपूर्ति करते हैं। मस्तिष्क अपने आप में एक रहस्यपूर्ण बिजली घर है, जिसमें जड़े हुए तार समस्त काया को कठपुतली की तरह नचाते हैं।

मनुष्य शरीर की बिजली एक प्रत्यक्ष सचाई है। उसे यंत्रों से भी देखा-जाना जा सकता है। वह अपने ढंग की अनोखी है। भौतिक विद्युत् से उसका स्तर बहुत ऊँचा है। बल्ब में जलने और चमकने वाली बिजली की तुलना में नेत्रों में चमकने वाली बिजली की गरिमा और जटिलता अत्यंत ऊँचे स्तर की समझी जानी चाहिए। तारों को छूने पर जैसा झटका लगता है, वैसा आमतौर से शरीरों के छूने से नहीं लगता है, तो भी काया संस्पर्श के दूरगामी कायिक और मानसिक प्रभाव उत्पन्न होते हैं। महामानवों के चरण-स्पर्श जैसे धर्मोपचार इसी दृष्टि से प्रचलित हैं। यह कायिक बिजली कभी-कभी भौतिक बिजली के रूप में देखने में आती है, उससे उस रहस्य पर पड़ा हुआ पर्दा और भी स्पष्ट रूप से उघर जाता है, जिसके अनुसार मनुष्य को चलता-फिरता बिजलीघर ही माना जाना चाहिए।

यह शक्ति इतनी प्रचंड होती है कि उससे संसार की आश्चर्यजनक मशीनरी का काम मनुष्य केवल अपनी इच्छा शक्ति से कर सकता है अर्थात् प्राण विद्युत् पर नियंत्रण इच्छा शक्ति का ही होता है। सामान्य स्थिति में तो अन्न और श्वासों से प्राप्त विद्युत्

ही काम करती रहती है, पर जैसे-जैसे योगाभ्यासी उस सत्ता का आंतरिक परिचय पाता चला जाता है, वह इस शक्ति का विकास भी इच्छा-शक्ति से ही करके कोई भी मनोरथ सफल करने और इच्छित आयु जीने में समर्थ होता है।

मनुष्य शरीर में बिजली की उपस्थिति न तो स्वल्प है और न महत्त्वहीन। बालों में कंघी करके उतनी भर रगड़ से उत्पन्न चुंबक को देखा जा सकता है। बालों से घिसने के बाद कंघी को लोहे की पिन से स्पर्श करें, तो उसमें चुंबक के गुण विद्यमान मिलेंगे। निर्जीव बालों में ही नहीं, सजीव मस्तिष्क में भी बिजली की महत्त्वपूर्ण मात्रा विद्यमान है। अन्य बिजलीघरों की तरह वहाँ भी बनाव-बिगाड़ का क्रम चलता रहता है। इस मरम्मत में चुंबकीय चिकित्सा का आशाजनक उपयोग किया जा सकता है।

हमें शरीर एवं मन को सजीव, स्फूर्तिवान एवं तेजस्वी बनाने के लिए अपनी विद्युत् शक्ति को सुरक्षित रखने का ही नहीं इस बात का भी प्रयत्न करना चाहिए कि उसमें निरंतर वृद्धि भी होती चले। क्षतिपूर्ति की व्यवस्था बनी रहे। यह प्रयोजन, प्राणायाम, षटचक्र वेधन, कुंडलिनी योग एवं शक्तिपात जैसी साधनाओं से संभव हो सकता है।

इस मानवी विद्युत् का ही प्रभाव है, जो एक-दूसरे को आकर्षित या प्रभावित करता है। उभरती आयु में यह बिजली काय आकर्षण की भूमिका बनती है, पर यदि उसका सदुपयोग किया जाए तो बहुमुखी प्रतिभा, ओजस्विता, प्रभावशीलता के रूप में विकसित होकर कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती है। ऊर्ध्व-रेता, संयमी ब्रह्मचारी लोग अपने ओजस् को मस्तिष्क में केंद्रित करके, उसे ब्रह्मवर्चस के रूप में परिणत करते हैं। विद्वान् दार्शनिक, वैज्ञानिक, नेता, वक्ता, योद्धा, योगी, तपस्वी जैसी विशेषताओं से संपन्न व्यक्तियों के संबंध में यही कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने ओजस् का, प्राणतत्त्व का अभिवर्धन, नियंत्रण एवं सदुपयोग किया है। यों यह शक्ति किन्हीं-किन्हीं में अनायास भी उभर पड़ती

देखी गई है और उसके द्वारा उन्हें कुछ अद्‌भुत काम करते भी पाया गया है।

जर्मनी का अधिनायक हिटलर जब रुग्ण होता तो उसे सुयोग्य डॉक्टरों की अपेक्षा एक 'नीम हकीम' क्रिस्टन का सहारा लेना पड़ता। उसकी उँगलियों में जादू था। दवा दारू वह कम करता था, हाथ का स्पर्श करके, दर्द को भगाने की उसको जादुई क्षमता प्राप्त थी। सन् १८६८ में वह इस्टोनिया में जन्मा प्रथम विश्वयुद्ध के बाद वह फिनलैंड का नागरिक बना, पीछे उसने मालिश करके रोगोपचार करने की कला सीखी, अपने कार्य में उसका कौशल इतना बढ़ा कि उसे जादुई चिकित्सक कहा जाने लगा। हिटलर ही नहीं, उसके जिगरी दोस्त हिमलर तक को उसने समय-समय पर अपनी चिकित्सा से चमत्कृत किया और भयंकर रुग्णता के पंजे से छुड़ाया। क्रिस्टन ने अपने परिचय और प्रभाव का उपयोग करके हिटलर के मृत्युपाश में जकड़े हुए लगभग एक लाख यहूदियों का छुटकारा कराया।

○ मनुष्य ही अपवाद नहीं

प्राण विद्युत् मनुष्य की उपलब्धि नहीं। सृष्टि के छोटे-छोटे जीवों में भी उसी का संचार हो रहा है। सितंबर १९६६ के नवनीत "अंक" में प्रसिद्ध जीवशास्त्री जेराल्ड ड्यूरल ने "इन्सान से भी पुराने वैज्ञानिक" लेख के अंतर्गत एक घटना दी है और बताया है कि ब्रिटिश गायना के चिड़ियाघर में एक ईल मछली, जो अपने शरीर से तीव्र विद्युत् करेंट निकालती है, एक हौज में थी। जब उसे खाना खिलाया गया तो ईल ने अपने शरीर को इस प्रकार कँपाया मानो कोई डायनेमो चलाया जा रहा हो। उससे इतनी तेज विद्युत् निकली कि खाने के लिए जो मछलियाँ डाली जा रही थीं, वह मर गईं। "टारपीडो फिश" की एक घटना भी उन्होंने दी है, इसमें एक लड़के ने इस मछली का शिकार करते हुए, उसके शरीर की बिजली के झटके के कारण अपने प्राण गँवा दिये थे।

कुछ जाति की मछलियाँ चलते-फिरते पावर हाउस कही जाती हैं। इनके शरीर में इतनी बिजली होती है कि संपर्क में आने वाले दूसरे जीवों को झटका देकर पछाड़ती है। जिस रास्ते वे गुजरती हैं, वहाँ का पानी भी चुंबकीय बन जाता है और उस क्षेत्र के जल-जंतु उसका प्रभाव अनुभव करते हैं। हिन्पास, जिन्मोटिस, इलेक्ट्रोफोरस, मेलाप्टोसूरस, मारमाइरस, स्टार गेजर, जाति की मछलियाँ इस किस्म की हैं। दक्षिणी अमेरिका के जलाशयों में पाई जाने वाली इलेक्ट्रोफोरस मछली में तो इतनी बिजली होती है कि पास में पानी के लिए जल में प्रवेश करने वाला मजबूत घोड़ा भी धराशायी हो जाए। अरब क्षेत्र में मेलाप्टोसूरस में भी ऐसी ही विद्युत् कड़क होती है, इसलिए इसे वहाँ के लोग 'राड' कहते हैं। राड अर्थात् आसमानी बिजली।

मत्स्य अनुसंधान में कम वोल्ट बिजली वाली मछली तो कई हैं, पर अधिक वोल्ट शक्ति वाली मछलियों में चार जातियाँ प्रमुख हैं। इनमें से रेजे में ४ वोल्ट, टारयडो में ४० वोल्ट, इलेक्ट्रिक ईल में ३५० से ५५० वोल्ट तक और कैट जाति की मछलियों में ३५० से ४५० वोल्ट तक बिजली होती है। इनमें एक विशेष प्रकार की पेशियाँ तथा तंतु पट्टियाँ होती हैं, जिनके घर्षण से डायनमो की तरह बिजली बनती है। जब वे चाहती हैं, तब इन अंगों को इस तरह चलाती हैं कि अभीष्ट मात्रा में बिजली उत्पन्न हो सके और वे मन चाहे प्रयोजन के लिए उसका प्रयोग कर सकें। साधारणतया यह विशेषता सुप्त ही पड़ी रहती है।

सर्प के नेत्रों की विद्युत् प्रख्यात है। सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जंतुओं की आँखें भी ऐसी ही बिजली उगलती हैं कि उसके प्रभाव के सामने आने वाले छोटे जीव अपनी सामान्य चेतना खो बैठते हैं। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर खड़े रहते हैं अथवा मौत के मुँह में दौड़ते हुए स्वयं ही घुस जाते हैं।

अफ्रीका के जंगलों में पाए जाने वाले बड़ी जाति के अजगर जलपान के लिए छोटे-छोटे मेढ़क, चूहे, गिलहरी, छिपकली जैसे

जीव घर बैठे ही प्राप्त कर लेते हैं। बड़े शिकार पकड़ने के लिए तो वे क्षुधातुर होने पर ही निकलते हैं। इन अजगरों की आँखों में विचित्र प्रकार का चुंबकत्व होता है। जिस पर उनकी नजर पड़ती है, वह उसकी जगह ठिठककर रह जाता है। उड़ने और दौड़ने की शक्ति खो बैठता है। इतना ही नहीं वह स्वयं खिसकता हुआ अजगर के फटे मुँह की तरफ बढ़ता आता है और स्वयमेव उसमें प्रवेश कर जाता है। प्रो० एफ० स्नाइडर ने एक बार पाले हुए अजगर के पिजड़े में कुछ चूहे छोड़े। चूहे पहले तो डरकर भागे और पिंजड़े के एक कोने में जा छिपे। किंतु जब अजगर ने उन्हें घूरकर देखा तो वे धीरे-धीरे अपने आप बढ़ते चले आए और सर्प के मुँह में घुस गए।

वेस्टइंडीज में 'ट्रेन इंसेक्ट' या रेलगाड़ी-कीड़ा' पाया जाता है। उसके मुँह पर एक लाल रंग का और दोनों बाजुओं में दीपकों की ११-११ की पंक्तियाँ पाई जाती हैं। यह हरा प्रकाश उत्पन्न करती हैं। चलते समय यह कीड़ा रात में चलती रेलगाड़ी की तरह लगता है, इसी कारण इसको यह नाम दिया गया है। दक्षिणी अमेरिका में भी यह बहुतायत से पाया जाता है। वेस्टइंडीज में ही 'कूकूजी' नामक एक कीड़ा पाया जाता है, इसे 'मोटर-कीड़ा' कहते हैं। यह जुगनू की ही एक जाति है, किंतु उसके मुँह पर दो दीपक होते हैं और वह दोनों पीले रंग का प्रकाश निकालते हैं। स्पेन अमेरिका के गृह-युद्ध के समय विलियम गोरगास नामक डॉक्टर ने इन कीड़ों को एक सफेद शीशी में भरकर, उनके प्रकाश में सफल आपरेशन किये थे।

कैटलफिश, दुश्मनों के आक्रमण के समय काले रंग का प्रकाश बादल फैला देते हैं। झींगे मछलियाँ और अन्य कई जल के जीव अपने शरीरों में प्रकाश उत्सर्जित करते हैं। जुगनू इस प्रकाश का उपयोग प्रजनन क्रिया से संकेत के रूप में करते हैं। मादा जुगनू एक बार संकेत करके शांत हो जाती है, तब नर उसे ढूँढ़ता हुआ उस तक पहुँच जाता है। इस तरह यह जीव किसी न किसी रूप में

इस प्रकाश का उपयोग प्रकृति प्रदत्त विभूति के रूप में करते हैं, जबकि मनुष्य को उसके लिए बाह्य साधनों का आश्रय लेना पड़ता है।

निर्जीव वस्तु से आग की लपटों का, विद्युत् का निकाल लेना इस वैज्ञानिक युग में कोई चमत्कार नहीं रह गया, किंतु जीवंत चेतना के यह दृश्य निःसंदेह अचंभे में डालने वाले हैं। जुगनू इस मामले में एक बहुत साधारण जीव है, जिसकी चमक से किसी को आश्चर्य नहीं होता। समुद्र में बहुत सारे एक कोशीय जीव पाए जाते हैं, जो जुगनू की तरह स्व-प्रकाशित होते हैं। दिन में तो उनकी चमक दृष्टिगोचर नहीं होती, किंतु रात में यह जीव रेत-कणों की तरह ऐसे चमकते हैं, जैसे अँधेरे आसमान में तारे चमकते हों। बैंजामिन फ्रैंकलिन जो एक प्रसिद्ध विद्युत्-वैज्ञानिक थे, पहले यह समझते थे कि समुद्र की यह चमक समुद्र के पानी और नमक के कणों से उत्पन्न विद्युत् कण हैं, किंतु पीछे उन्होंने भी अपनी भूल-सुधारी और बताया कि समुद्र ही नहीं धरती पर भी सड़ी-गली वस्तुएँ खाने वाले अनेक जीव हैं, जो अपने भीतर से विद्युत् पैदा करते हैं। कृत्रिम रूप से विनिर्मित विद्युत् की मात्रा में ताप की मात्रा उससे कई गुनी अधिक होती है, किंतु मनुष्य में; मनुष्येत्तर जीवों में ऐसा क्यों नहीं होता ? इस प्रकाश को बैंजामिन ने 'ठंडे-प्रकाश' (कोल्ड लाइट) की संज्ञा दी है। दो हजार जुगनू एक साथ चमकें तो उसमें एक मोमबत्ती का प्रकाश उत्पन्न हो सकता है, पर उस प्रकाश को यदि एकत्र किया जाए तो रुई भी नहीं जल सकती, जबकि मोमबत्ती ईंधन को भी जला देगी।

१८८६ में प्राणिशास्त्रियों ने एक प्रकाश देने वाली सीप के शरीर से 'लुसिफेरिन' नामक एक रसायन निकालकर यह सिद्ध किया कि ऐसे जीवों में यही तत्त्व प्रकाश उत्पन्न करता है। यह तत्त्व शरीर की विशिष्ट ग्रंथियों से निकलता है और ऑक्सीजन के संपर्क में आकर, प्रकाश के रूप में परिणत हो जाता है। जुगनू में मैगनेटिक बेल की तरह यह तत्त्व रुक-रुक कर निकलता है, इसी

से वह जलता-बुझता रहता है, किंतु यह तत्त्व किस तरह बनता है, इस संबंध में वैज्ञानिक अब तक कोई जानकारी प्राप्त नहीं कर सके। संभव है, जीवन की खोज करते-करते वह रहस्य करतलगत हों, जो इन तथ्यों का भी पता लगा सकें और प्राण चेतना की गुत्थियाँ भी सुलझा सकें।

विश्वव्यापी विद्युत् चुंबक से कौन कितना लाभ उठा ले ? यह उस प्राणी की शरीर रचना एवं चुंबकीय क्षमता पर निर्भर है। कितने ही पक्षी ऋतु-परिवर्तन के लिए झुंड बनाकर, सहस्रों मील की लंबी उड़ानें भरते हैं ? वे धरती के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जा पहुँचते हैं। इनकी उड़ानें प्रायः रात को होती हैं। उस समय प्रकाश जैसी कोई सुविधा भी उन्हें नहीं मिलती, यह कार्य उनकी अंतःचेतना पृथ्वी के इर्द-गिर्द फैले हुए चुंबकीय घेरे में चल रही हलचलों के आधार पर ही पूरा करती है। इस धारा के सहारे वे इस तरह उड़ते हैं, मानो किसी सुनिश्चित सड़क पर चल रहे हों।

टरमाइन कीड़े अपने घरों का प्रवेश द्वार सदा निर्धारित दिशा में ही बनाते हैं। समुद्री तूफान आने से पहले ही समुद्री बतख आकाश में उड़कर तूफानी क्षेत्र से पहले ही बहुत दूर निकल जाती हैं। चमगादड़ अँधेरी रात में आँख के सहारे नहीं, अपनी शरीर विद्युत् के सहारे ही वस्तुओं की जानकारी प्राप्त करते हैं और पतले धागों से बचकर उपयोगी रास्ते पर उड़ते हैं। मेंढ़क मरे और जिंदे शिकार का भेद अपनी शारीरिक विद्युत् के सहारे ही जान पाता है। मरी और जीवित मक्खियों का ढेर सामने लगा देने पर, वह मरी छोड़ता और जीवित खाता चला जायेगा। उल्लू की शिकार दबोचने की क्षमता उसकी आँखों पर नहीं, विद्युत्-संस्थान पर निर्भर रहती है। साँप समीपवर्ती प्राणियों के शरीरों के तापमान का अंतर समझता है और अपने रुचिकर प्राणी को ही पकड़ता है। भुनगों की आँखें नहीं होतीं। वह अपना काम विशेष फोटो सेलों से बनाते हैं। अपने युग में अनेक वैज्ञानिक यंत्र प्राणियों की अद्‌भुत विशेषताओं को छानबीन करने के उपरांत उन्हीं सिद्धांतों के सहारे बनाए गए

हैं। प्राणियों में पाई जाने वाली विद्युत् शक्ति ही उनके जीवन निर्वाह के आधार बनाती है। इंद्रिय शक्ति कम होने पर भी वे उसी के सहारे सुविधापूर्वक समय गुजारते हैं।

योग-साधनाओं का एक उद्देश्य इस चेतना विद्युत् शक्ति का अभिवर्धन करना भी है। इसे मनोबल, प्राणबल और आत्मबल भी कहते हैं। संकल्प शक्ति और इच्छा शक्ति के रूप में इसी के चमत्कार देखे जाते हैं।

आत्म शक्ति संपन्न व्यक्ति अपनी जन संपर्क गतिविधियों को निर्धारित एवं नियंत्रित करते हैं। विशेषतया काम सेवन संबंधी संपर्क से बचाव इसी आधार पर किया जाता है। अत्यंत महत्त्वपूर्ण शक्ति को उपयोगी दिशा में ही नियोजित करने के लिए सुरक्षित रखा जा सके और उसका क्षुद्र मनोरंजन के लिए अपव्यय न होने पाए।

अध्यात्म शास्त्र में प्राण विद्या का एक स्वतंत्र प्रकरण एवं विधान है। इनके आधार पर साधनारत होकर मनुष्य इस प्राप्त विद्युत् की इतनी अधिक मात्रा अपने में संग्रह कर सकता है कि उस आधार पर अपना ही नहीं अन्य अनेकों का भी उपकार उद्धार कर सके।

❑ ❑

पाँच प्राण—पाँच शक्ति धाराएँ

*

यों प्राणतत्त्व एक है, पर प्राणी के शरीर में उसकी क्रियाशीलता के आधार पर कई भागों में विभक्त किया गया है। शरीर के प्रमुख अवयव मांस-पेशियों से बने हैं, पर संगठन की भिन्नता के कारण उनके आकार-प्रकार में भिन्नता पाई जाती है। इसी आधार पर उसका नामकरण एवं विवेचन भी पृथक्-पृथक् होता है। मानवी-काया में प्राण-शक्ति को भी विभिन्न उत्तरदायित्व निबाहने पड़ते हैं। उन्हीं के आधार पर उनके नामकरण भी अलग-अलग हैं और गुण धर्म की भिन्नता भी बताई जाती है। इस पृथकता के मूल में एकता विद्यमान है। प्राण अनेक नहीं हैं। उसके विभिन्न प्रयोजनों में व्यवहार पद्धति ही पृथक् है। बिजली एक है, पर उसके व्यवहार विभिन्न यंत्रों में भिन्न प्रकार के होते हैं। हीटर, कूलर, पंखा, प्रकाश, पिसाई आदि करते समय उसकी शक्ति एवं प्रकृति भिन्न लगती है। उपयोग और प्रयोजन को देखते हुए भिन्नता अनुभव की जा सकती है, तो भी जानने वाले जानते हैं कि यह सब एक ही विद्युत् शक्ति के बहुमुखी क्रिया-कलाप हैं। प्राण-शक्ति के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। शास्त्रकारों ने उसे कई भागों में विभाजित किया है, कई नाम दिए हैं और कई तरह से व्याख्या की है। उसका औचित्य होते हुए भी इस भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं कि प्राणतत्त्व कितने ही प्रकार का है और उन प्रकारों में भिन्नता एवं विसंगति है। इस प्राण विस्तार को भी **"एकोऽहं बहुस्याम्"** का एक स्फुरण कहा जाता है।

मानव शरीर में प्राण को दस भागों में विभक्त माना गया है। इनमें ५ प्राण और ५ उप प्राण हैं। प्राणमय कोश इन्हीं १० के सम्मिश्रण से बनता है। ५ मुख्य प्राण हैं (१) अपान (२) समान (३) प्राण (४) उदान (५) व्यान। उपप्राणों को (१) देवदत्त (२) कृकल (३) कूर्म (४) नाग (५) धनंजय नाम दिया गया है।

शरीर क्षेत्र में इन प्राणों के क्या-क्या कार्य हैं ? इसका वर्णन आयुर्वेद शास्त्र में इस प्रकार किया गया है—

(१) **अपान**—अपनयति प्रकर्षेण मलं निस्सारयति अपकर्षति च शक्तिम् इति अपानः।

अर्थात्—जो मलों को बाहर फेंकने की शक्ति से संपन्न है, वह अपान है। मल-मूत्र, स्वेद, कफ, रज, वीर्य आदि का विसर्जन, भ्रूण का प्रसव आदि बाहर फेंकने वाली क्रियाएँ—इसी अपान प्राण के बल से संपन्न होती हैं।

(२) **समान**—रसं समं नयति सम्यक् प्रकारेण नयति इति समानः।

अर्थात्—जो रसों को ठीक तरह यथास्थान ले जाता और वितरित करता है—वह समान है। पाचक रसों का उत्पादन और उनका स्तर उपयुक्त बनाये रखना इसी का काम है।

पातंजलि योग सूत्र के पाद ३ सूत्र ४० में कहा गया है—"समान जयात् ज्वलनम्" अर्थात् समान द्वारा शरीर की ऊर्जा एवं सक्रियता ज्वलंत रखी जाती है।

(३) **प्राण**—प्रकर्षेण आनयति प्रकर्षेण या बलं ददाति आकर्षति शक्तिं स प्राणः।

अर्थात्—जो श्वास, आहार आदि को खींचता है और शरीर में बल संचार करता है, वह प्राण है। शब्दोच्चार में प्रायः इसी की प्रमुखता रहती है।

(४) **उदान**—उन्नयति यः उद्आनयति वा तदुदान।

अर्थात्—जो शरीर को उठाए रहे, कड़क रखे, गिरने न दे—वह उदान है। ऊर्ध्वगमन की अनेकों प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष क्रियाएँ इसी के द्वारा संपन्न होती हैं।

(५) **व्यान**—व्याप्नोति शरीरं यः स व्यानः।

अर्थात्—जो संपूर्ण शरीर में संव्याप्त है—वह व्यान है। रक्त-संचार, श्वास-प्रश्वास, ज्ञान-तंतु आदि माध्यमों से यह सारे

शरीर पर नियंत्रण रखता है। अंतर्मन की स्वसंचालित शारीरिक गतिविधियाँ इसी के द्वारा संपन्न होती हैं।

इस तरह प्रथम प्राण का कार्य श्वास-प्रश्वास क्रिया का संपादन स्थान छाती है। इस तत्त्व की ध्यानावस्था में अनुभूति पीले रंग की होती है और षटचक्र-वेधन की प्रक्रिया में यह अनाहत चक्र को प्रभावित करता पाया जाता है।

द्वितीय अपान—का कार्य शरीर के विभिन्न भागों से निकलने वाले मलों का निष्कासन एवं स्थान गुदा है। यह नारंगी रंग की आभा में अनुभव किया है और मूलाधार चक्र को प्रभावित करता है।

तीसरा समान—अन्न से लेकर रस-रक्त और तप्त धातुओं का परिपाक करता है और स्थान नाभि है। हरे रंग की आभा वाला और मणिपूर चक्र से संबंधित इसे बताया गया है।

चौथा उदान—का कार्य आकर्षण ग्रहण करना, अन्न-जल, श्वास, शिक्षा आदि जो कुछ बाहर से ग्रहण किया जाता है, वह ग्रहण प्रक्रिया इसी के द्वारा संपन्न होती है। निद्रावस्था तथा मृत्यु के उपरांत का विश्राम संभव करना भी इसी का काम है। स्थान कंठ, रंग बैंगनी तथा चक्र विशुद्धाख्य है।

पाँचवा व्यान—इसका कार्य रक्त आदि का संचार, स्थानांतरण। स्थान संपूर्ण शरीर। रंग गुलाबी और चक्र स्वाधिष्ठान है।

पाँच उप प्राण इन्हीं पाँच प्रमुखों के साथ उसी तरह जुड़े हुए हैं जैसे मिनिस्टरों के साथ सेक्रेटरी रहते हैं। प्राण के साथ नाग। अपान के साथ कूर्म। समान के साथ कृकल। उदान के साथ देवदत्त और व्यान के साथ धनंजय का संबंध है। नाग का कार्य वायु संचार, डकार, हिचकी, गुदा वायु। कूर्म का नेत्रों के क्रिया-कलाप, कृकल का भूख-प्यास, देवदत्त का जँभाई, अँगड़ाई, धनंजय का हर अवयव की सफाई जैसे कार्यों का उत्तरदायी बताया

गया है, पर वस्तुतः वे इतने छोटे कार्यों तक ही सीमित नहीं है। मुख्य प्राणों की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित बनाए रखने में उनका पूरा योगदान रहता है। इन प्राण और उप प्राणों के भेद को और भी अच्छी तरह समझना हो तो तन्मात्राओं और ज्ञानेंद्रियों के संबंध पर गौर करना चाहिए। शब्द तत्त्व को ग्रहण करने के लिए कान, रूप तत्त्व की अनुभूति के लिए नेत्र, रस के लिए जिह्वा, गंध के लिए नाक और स्पर्श के लिए जो कार्य त्वचा करती है, उसी प्रकार प्राण तत्त्व द्वारा विनिर्मित सूक्ष्म संभूतियों को स्थूल अनुभूतियों में प्रयुक्त करने का कार्य यह उपप्राण संपादित करते हैं। यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि यह वर्गीकरण मात्र वस्तुस्थिति को समझने और समझाने के उद्देश्य से ही किया गया है। अलग-अलग आकृति-प्रकृति के दस व्यक्तियों की तरह इन्हें दस सत्ताएँ नहीं मान बैठना चाहिए। एक ही व्यक्ति को विभिन्न अवसरों पर पिता, पुत्र, भाई, मित्र, शत्रु, सुषुप्त, जाग्रत्, मलीन, स्वच्छ स्थितियों में देखा जा सकता है। लगभग उसी प्रकार का यह वर्गीकरण भी समझा जाए।

प्राण शरीर-शरीरस्थ प्राण-संस्थान के न केवल अस्तित्व का बल्कि उसके गुण, धर्मों तथा क्रिया-कलापों, प्रभावों आदि का भी वर्णन विस्तारपूर्वक भारतीय ग्रंथों में मिलता है। इस मान्यता को स्थूल विज्ञान बहुत दिनों तक झुठलाता रहा, किंतु शरीर विज्ञान के संदर्भ में जैसे-जैसे उसकी जानकारियाँ बढ़ रही हैं, प्राण-संस्थान के अस्तित्व को एक सुनिश्चित तथ्य के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। भौतिक विज्ञान के स्थूल उपकरणों की पकड़ में भी इस सूक्ष्म सत्ता के अनेक प्रमाण आने लगे हैं।

रूस के इलेक्ट्रॉनिक विज्ञानवेत्ता ऐमयोन किर्लियान ने एक ऐसी फोटोग्राफी का आविष्कार किया है, जो मनुष्य के इर्द-गिर्द होने वाली विद्युतीय हलचलों का भी छायांकन करती है। इससे प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर के साथ-साथ सूक्ष्म शरीर की भी सत्ता

विद्यमान है और वह ऐसे पदार्थों से बनी है, जो इलेक्ट्रॉनों से बने ठोस पदार्थ की अपेक्षा भिन्न स्तर की है और अधिक गतिशील भी।

इंग्लैंड के डॉ० किलनर एक बार अस्पताल में रोगियों का परीक्षण कर रहे थे। एक मरणासन्न रोगी की जाँच करते समय उन्होंने देखा कि उनकी दूरबीन (माइक्रोस्कोप) के शीशे पर एक विचित्र प्रकार के रंगीन प्रकाश कण जम गये हैं, जो आज तक कभी भी देखे नहीं गये थे। दूसरे दिन उसी रोग के कपड़े उतरवाकर जाँच करते समय डॉ० किलनर फिर चौंके। उन्होंने देखा, जो प्रकाश कल दिखाई दिया था, आज वह लहरों के रूप में माइक्रोस्फोप के शीशे के सामने उड़ रहा है। रोगी के शरीर के चारों ओर छह-सात इंच परिधि में यह प्रकाश फैला है, उसमें कई दुर्लभ रासायनिक तत्त्वों के प्रकाश कण भी थे। उन्होंने देखा, जब प्रकाश मंद पड़ता है, तब उसके शरीर और नाड़ी की गति में शिथिलता आ जाती है। थोड़ी देर बाद एकाएक प्रकाश पुंज विलुप्त हो गया। अब की बार जब उन्होंने नाड़ी पर हाथ रखा तो पाया कि उसकी मृत्यु हो गई। इस घटना को कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने के साथ-साथ डॉ० किलनर ने विश्वास व्यक्त किया कि जिस द्रव्य में जीवन के मौलिक गुण विद्यमान होते हैं, वह पदार्थ से प्रथम अति सूक्ष्म सत्ता है। उसका विनाश होता हो ऐसा संभव नहीं है।

प्राणतत्त्व को ही एक चेतन ऊर्जा (लाइव एनर्जी) कहा गया है। भौतिक विज्ञान के अनुसार एनर्जी के छह प्रकार माने जाते हैं—(१) ताप (हीट) (२) प्रकाश (लाइट), (३) चुंबकीय (मैगनैटिक), (४) विद्युत् (इलेक्ट्रिसिटी), (५) ध्वनि (साउंड), (६) घर्षण (फ्रिक्शन) अथवा यांत्रिक (मैकेनिकल)। एक प्रकार की एनर्जी को किसी भी दूसरे प्रकार की एनर्जी में बदला भी जा सकता है। शरीरस्थ चेतन क्षमता—लाइव एनर्जी—इन विज्ञान सम्मत प्रकारों से भिन्न होते हुए भी उनके माध्यम से जानी समझी जा सकती है।

एनर्जी के बारे में वैज्ञानिक मान्यता है कि वह नष्ट नहीं होती बल्कि उसका केवल रूपांतरण होता है। यह भी माना जाता है कि एनर्जी किसी भी स्थूल-पदार्थ से संबद्ध रह सकती है; फिर भी उसका अस्तित्व उससे भिन्न है और वह एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में स्थानांतरित (ट्रांसफर) की जा सकती है। प्राण के संदर्भ में भी भारतीय द्रष्टाओं का यही कथन है। अब तो पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इसे स्वीकार करने लगे हैं।

इस संदर्भ में फोनोग्राफ, प्रकाश के बल्ब के आविष्कर्त्ता टॉमस एडिसन ने अत्यंत बोधगम्य प्रकाश डालते हुए लिखा है—"प्राणी की सत्ता उच्चस्तरीय विद्युत्-कण गुच्छकों के रूप में तब भी बनी रहती है, जब वह शरीर से पृथक् हो जाती है। मृत्यु के उपरांत यह गुच्छक विधिवत् तो नहीं होते, पर वे परस्पर संबद्ध बने रहते हैं। यह बिखरते नहीं, वरन् आकाश में भ्रमण करते रहने के उपरांत पुनः जीवन चक्र में प्रवेश करते और नया जन्म धारण करते हैं। इनकी बनावट बहुत कुछ मधुमक्खी के छत्ते की तरह होती है। पुराना छत्ता वे एक साथ छोड़ती हैं और नया एक साथ बनाती हैं। इसी प्रकार उच्चस्तरीय विद्युत् कणों के गुच्छक अपने साथ स्थूल शरीर की सामग्री अपनी आस्थाओं और संवदेना के साथ लेकर जन्मने-मरने पर भी अमर बने रहते हैं।

इन प्रमाणों से शरीर में अन्नमय कोश से संबद्ध किंतु एक स्वतंत्र अस्तित्व संपन्न प्राणमय कोश का होना स्वीकार करना ही पड़ता है। यों भी शरीर में विज्ञान सम्मत ताप आदि छहों प्रकार की एनर्जी (ऊर्जा) के प्रमाण पाए जाते हैं, किंतु सारे शरीर में संव्याप्त प्राणमय कोश का स्वरूप सबसे अधिक स्पष्टता से जैवीय विद्युत् (बायो इलेक्ट्रिकसिटी) के रूप में समझा जा सकता है।

शरीर विज्ञान में अब कॉस्मिक विद्युत् पर पर्याप्त शोधें हो रही हैं। शरीर में कुछ केंद्र तो निर्विवाद रूप से विद्युत् उत्पादक के रूप में स्वीकार कर लिए जाते हैं। उनमें प्रधान हैं—मस्तिष्क, हृदय तथा नेत्र। मस्तिष्क में विद्युत् उत्पादन केंद्र को 'रेटिकुलर

एक्टिवेटिंग सिस्टम' कहते हैं। मस्तिष्क के मध्य भाग की गहराइयों में स्थित कुछ मस्तिष्कीय अवयवों में से विद्युत स्पंदन (इलेक्ट्रिक इंपल्स) पैदा होते रहते हैं तथा सारे मस्तिष्क में फैलते जाते हैं। यह विद्युतीय आवेश ही मस्तिष्क के विभिन्न केंद्रों को संचालित तथा परस्पर संबंधित रखते हैं। चिकित्सा विज्ञान में प्रयुक्त मस्तिष्कीय विद्युत् मापक यंत्र (इलेक्ट्रो एंकैफलोग्राफ) ई० ई० जी० द्वारा मस्तिष्कीय विद्युत् धाराओं को नापा जाता है। उन्हीं के आधार पर मस्तिष्क एवं सिर से संबंधित रोगों के बारे में निर्धारण किया जाता है। सिर में विभिन्न स्थानों पर यंत्र के रज्जू (कार्ड) लगाए जाते हैं। उनसे नापे गए विद्युत्-विभव (पोटैंशल) का योग लगभग १ मिमी वोल्ट आता है।

हृदय के संचालन में लगभग १० तार शक्ति विद्युत् की आवश्यकता पड़ती है। यह विद्युत् हृदय में ही पैदा होती है। हृदय में जिस क्षेत्र से विद्युत् स्पंदन पैदा होते हैं, उसे 'पेस मेकर' कहते हैं। वह विद्युत् स्पंदन पैदा होते ही लगभग ०.८ सेकेंड में एक विकसित मनुष्य के सारे हृदय में फैल जाते हैं। इतने ही समय में हृदय अपनी एक धड़कन पूरी करता है। हृदय की धड़कन के कारण तथा नियंत्रक यही विद्युत् स्पंदन होते हैं। इन विद्युत्-स्पंदनों का प्रभाव ई० सी० जी० (इलेक्ट्रो कार्डियोग्राफ) नामक यंत्र पर अंकित होते हैं। हृदय रोगों के निर्धारण के लिए इन विद्युत्-स्पंदनों को ही आधार मानकर चला जाता है।

नेत्रों में भी वैज्ञानिकों के मतानुसार फोटो इलेक्ट्रिक सैल जैसी व्यवस्था है। फोटो इलेक्ट्रिक सैल की विशेषता यह होती है कि वह प्रकाश को विद्युत्-तरंगों में बदल देता है। नेत्रों में भी इसी पद्धति से विद्युत् उत्पादन की क्षमता वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। नेत्र रोगों के निर्धारण वर्गीकरण के लिए नेत्रों में उत्पन्न विद्युत स्पंदनों को ई० आर० जी० (इलेक्ट्रो रैटिनोग्राफ) यंत्र पर अंकित किया जाता है।

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि शरीरस्थ कुछ केंद्रों में विद्युतीय-स्पंदनों के उत्पादन के साथ-साथ सारे शरीर में उनका संचार भी होता है। ई० ई० जी० के द्वारा सिर के हर हिस्से में मस्तिष्कीय कोष विद्युत् के स्पंदन रिकार्ड किए जाते हैं। यही नहीं बहुत बार तो उनका प्रभाव गर्दन से नीचे वाले अवयवों में भी स्पष्टता से मिलता है। हृदय की विद्युत् का प्रभाव तो ई० सी० जी० यंत्र द्वारा पैर के टखनों तक पर रिकार्ड किया जाता है। हृदय के निकटतम तथा दूरतम सभी अंगों में यह स्पंदन समान रूप से शक्तिशाली पाए जाते हैं।

शरीरस्थ प्राण प्रवाह के माध्यम से रोगों के निदान पर चिकित्साशास्त्रियों का विश्वास दृढ़ हो गया है। मांस-पेशियों की निष्क्रियता तथा स्नायु-संस्थान के रोगों में भी प्राण चिकित्सा पद्धति प्रयुक्त की जाती है। इसके लिए ई० एस० जी० (इलेक्ट्रोमायोग्राफ) का प्रयोग होता है। शरीर के हर क्षेत्र के स्नायुओं अथवा मांस-पेशियों में विद्युतीय ऊर्जा की उपस्थिति तथा सक्रियता का यह स्पष्ट प्रमाण है कि शरीर की त्वचा जैसी पतली पर्त में भी उसकी अपने ढंग की विद्युत् विद्यमान है। चिकित्साशास्त्री त्वचा के परीक्षण में भी त्वक विद्युतीय प्रतिक्रिया (गैल्वॉनिक स्किन रिस्पान्स) पद्धति का प्रयोग करते हैं।

इन वैज्ञानिक प्रमाणों के अतिरिक्त सामान्य व्यावहारिक जीवन में भी मस्तिष्क से लेकर त्वचा तक में विद्युत्-संवेगों की क्षमता के प्रमाण मिलते रहते हैं। किसी व्यक्ति विशेष के प्रति आकर्षण तथा किसी के प्रति विकर्षण, यह शरीरस्थ विद्युत् की समानता, भिन्नता की ही प्रतिक्रियाएँ हैं। दो मित्रों के परस्पर एक-दूसरे को देखने, स्पर्श करने में विद्युतीय आदान-प्रदान होता है। योगी तो स्पर्श से अपनी विद्युत् का दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश-प्रयोग संकल्प शक्ति के सहारे विशेष रूप से कर सकते हैं, किंतु सामान्य स्पर्श से भी शरीरस्थ विद्युत् का आंशिक आदान-प्रदान होता है। स्पर्श, सहलाने, हाथ मिलाने, गले मिलने

आदि से जो स्पंदन अनुभव किए जाते हैं, वे विद्युतीय आवेगों के ही आदान-प्रदान के फलस्वरूप होते हैं। यह तथ्य भी अब वैज्ञानिक स्वीकार करने लगे हैं।

भारतीय मत रहा है कि शरीर का अस्तित्व बनाए रखने, उसके पोषण, पुनर्निर्माण, विकास एवं संशोधन जैसी हर क्रिया प्राण द्वारा ही संचालित है। अन्नमय कोश में व्याप्त प्राणमय कोश ही उनका संचालन, नियंत्रण करता है। शरीर संस्थान की छोटी से छोटी इकाई में भी प्राण-विद्युत् का अस्तित्व अब विज्ञान ने स्वीकार कर लिया है। शरीर की हर कोशिका विद्युत्-विभव (इलेक्ट्रिक चार्ज) है। वही नहीं कोशिका के नाभिक (न्यूक्लियस) में लाखों की संख्या में रहने वाले प्रजनन क्रिया के लिए उत्तरदायी जीन्स जैसे अति सूक्ष्म घटक भी आवेश युक्त पुटिकाओं (पैक्टि्स) के रूप में जाने और माने जाते हैं। तात्पर्य यह है कि विज्ञान द्वारा जानी जा सकी शरीर की सूक्ष्मतम इकाई में भी विद्युत् आवेश के रूप में प्राणतत्त्व की उपस्थिति स्वीकार की जाती है।

शरीर की हर क्रिया का संचालन प्राण द्वारा होने की बात भी सदैव से कही जाती रही है। योग ग्रंथों में शरीर की विभिन्न क्रियाओं को संचालित करने वाले प्राणतत्त्व को विभिन्न नामों से संबोधित किया गया है। उन्हें पंच-प्राण कहा गया है। इसी प्रकार शरीर के विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय प्राण को पंच उपप्राण कहा गया है। वर्तमान शरीर विज्ञान ने भी शारीरिक अंतरंग क्रियाओं की व्याख्याएँ विद्युत् संचार क्रम के ही आधार पर की हैं। शरीर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जो संचार क्रम चलता है, वह विद्युती-संवहन प्रक्रिया के माध्यम से ही है। संचार कोशिकाओं में ऋण और धन प्रभार (नेगेटिव तथा पॉजिटिव चार्ज) अंदर बाहर होते रहते हैं और इसी से विभिन्न संचार क्रम चलते रहते हैं। इसे वैज्ञानिक भाषा में सैल का 'डिपोलराइजेशन' तथा 'रीपोलराइजेशन' कहते हैं। यह प्रक्रिया भारतीय मान्यतानुसार पंच-प्राणों में वर्णित 'व्यान' के अनुरूप है।

आमाशय तथा आँतों में भोजन का पाचन होकर, उसे शरीर के अनुकूल रासायनिक रसों में बदल दिया जाता है। वह रस आँत की झिल्ली में से पार होकर रस में मिलते हैं, तब सारे शरीर में फैल पाते हैं। कुछ रसायन तो सामान्य संचरण क्रम से ही रक्त में मिल जाते हैं, किंतु कुछ के लिए शरीर को शक्ति खर्च करनी पड़ती है। इस विधि को 'एक्टिव ट्रांसपोर्ट' (सक्रिय परिवहन) कहते हैं। इस परिवहन से आँतों में जो विद्युतीय प्रक्रिया होती है, उसे वैज्ञानिक 'सोडियम पंप' के नाम से संबोधित करते हैं। सोडियम कणों में ऋण और धन प्रभार बदलने से वह सैलों की दीवार के इस पार से उस पार जाते-आते हैं। उनके संसर्ग से शरीर के पोषक रसों (ग्लूकोज, वसा आदि) की भेदकता बढ़ जाती है तथा वह भी उसके साथ संचरित हो जाते हैं। यह प्रक्रिया पंच प्राणों में 'प्राण' वर्ग के अनुरूप कही जा सकती है।

ऐसी प्रक्रिया हर सैल में चलती है। हर सैल अपने उपयुक्त आहार खींचता है तथा उसे ताप ऊर्जा में बदलता है। ताप ऊर्जा भी हर समय सारे शरीर में लगातार पैदा होती है और संचरित होती रहती है। पाचन केवल आँतों में नहीं, शरीर के हर सैल में होता है। उसके लिए रसों को हर सैल तक पहुँचाया जाता है। यह प्रक्रिया जिस प्राण ऊर्जा के सहारे चलती है, उसे भारतीय प्राणवेत्ताओं ने 'समान' कहा है। इसी प्रकार हर कोशिका में रस परिपाक के दौरान तथा पुरानी कोशिकाओं के विखंडन से जो मल बहता है, उसके लिए भी विद्युत् रासायनिक (इलेक्ट्रो कैमिकल) क्रियाएँ उत्तरदायी हैं। प्राण विज्ञान में इसे 'अपान' की प्रक्रिया कहा गया है।

पंच-प्राणों में एक वर्ग 'उदान' भी है। इसका कार्य शरीर के अवयवों को कड़ा रखना है। वैज्ञानिक भाषा में इसे इलेक्ट्रिकल स्टिमुलाइजेशन कहा जाता है। शरीरस्थ विद्युत्-संवेगों से अन्नमय कोश के सैल किसी भी कार्य के लिए कड़े अथवा ढीले होते रहते हैं।

शरीर में इस प्रकार की अनेक अंतरंग प्रक्रियाएँ कैसे चलती हैं ? इसकी व्याख्या वैज्ञानिक पूरी तरह नहीं कर सके हैं। उसके लिए उन्होंने कई तरह के स्थूल सिद्धांत बनाए हैं। उनमें सोडियम पोटैशियम साइकिल, पोटेशियम पंप, ए० टी० फी०,—ए० डी० फी० सिस्टम तथा साइकिलिक ए० एम० पी० आदि हैं। इनकी क्रिया पद्धति तो कोई रसायन विज्ञान का विद्यार्थी ही ठीक से समझ सकता है, किंतु है यह सब 'विद्युत् रासायनिक' सिद्धांत ही। इस सिद्धांत के अनुसार किसी घोल में रासायनिक पदार्थों के अणु ऋण और धन प्रभार युक्त भिन्न-भिन्न कणों में विभक्त हो जाते हैं। उन्हें आयन कहा जाता है। इन आयनों की संचार क्षमता बहुत अधिक होती है। इच्छित संचार के बाद ऋण और धन प्रभारयुक्त आयन मिलकर पुनः विद्युतीय दृष्टि से उदासीन (न्यूट्रल) अणु बना लेते हैं। शरीर में पाचन, शोधन, विकास एवं निर्माण की अगणित प्रक्रियाएँ इसी आधार पर चल रही हैं। तत्व दृष्टि से देखा जाए तो सारे शरीर संस्थान में प्राणतत्त्व की सत्ता और सक्रियता स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ेगी।

इन मोटी गतिविधियों से आगे बढ़कर शरीर की सूक्ष्म, गहन गतिविधियों का विश्लेषण करने पर उनमें भी प्राण शरीरस्थ प्राणतत्त्व का नियंत्रण तथा प्रभाव दिखाई देता है। शरीर में हारमोनों और एंजाइमों की अद्‌भुत प्रक्रिया सर्वविदित है। इन दोनों की सक्रियता शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन लाने एवं शक्ति संचार करने में समर्थ है। प्रजनन विज्ञान के अंतर्गत, जीन्स की विलक्षण भूमिका की चर्चा आजकल वैज्ञानिक क्षेत्र में सर्वत्र की जाती है। इन सभी को विद्युत् चुंबकीय संवेगों द्वारा प्रभावित किए जाने की संभावना वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। वह अभी ऐसा कर नहीं सके हैं, किंतु उस पर विश्वास करते हैं तथा उसके लिए तीव्र शोध कार्य किए जा रहे हैं। विश्वास किया जाता है कि ऐसी विधि हाथ लग जाए तो शरीर क्षेत्र में हर चमत्कार संभव हो जायेगा।

प्राणतत्त्व की सुविस्तृत जानकारी के बाद इस महान् तत्त्व के उपार्जन उपयोग की ओर भारतीय तत्त्ववेत्ताओं का ध्यान गया अतएव उन्होंने उसके लिए भी अनेक साधनाएँ निश्चित कीं। प्राणायाम उनमें से प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति के लिए एक सुलभ साधन कहा जा सकता है।

प्राणायाम साधारणतया श्वास-प्रश्वास का एक व्यायाम प्रतीत होता है। स्वास्थ्य-संवर्धन के क्षेत्र में उसे 'फेंफड़ों की कसरत' के रूप में लिया जाता है। आरोग्यशास्त्री उसका लाभ उसी सीमा में बताते हैं। श्वास प्रणाली की गड़बड़ी अथवा फेंफड़ों की दुर्बलता, रुग्णता का उपचार करने के लिए कई प्रकार की श्वास-प्रश्वास कसरतें प्रचलित हैं। यह सभी प्रयोग अपनाए जाने योग्य और सराहनीय हैं, किंतु उसे बाल कक्षा मात्र ही माना जाना चाहिए। प्राणायाम का प्रयोजन तो निखिल ब्रह्मांड में से प्राणतत्त्व की अभीष्ट मात्रा को आकर्षित करने की तथा उस उपलब्धि की अभीष्ट संस्थानों में पहुँचाने की विशिष्ट कला के रूप में ही समझा जाना चाहिए। साँस को प्राण नहीं कह सकते हैं। साँस के साथ प्राण घुला होना, साँस के सहारे प्राणतत्त्व को आकर्षित कर सकना एक बात है और मात्र श्वास-प्रश्वास क्रिया करना सर्वथा दूसरी। प्राणायाम में प्रबल संकल्प-शक्ति का समावेश करना पड़ता है। उसी के चुंबकत्व से व्यापक प्राणतत्त्व को आकाश से खींच सकने में सफलता मिलती है। फिर उपलब्धि को अभीष्ट स्थान पर भेज सकना और मनोवांछित परिणाम प्राप्त करना भी तो प्रबल संकल्प-बल से ही संभव है। श्वसन क्रिया के साथ-साथ प्रचंड मनोबल का समावेश करने से ही प्राणायाम क्रिया होती है। उसी समन्वय से वे परिणाम मिलते हैं, जिनका प्राण-विद्या के अंतर्गत वर्णन किया गया है।

○ प्राणों का क्षय—मृत्यु का भय

प्राण-शक्ति का यथास्थान संतुलन बना रहे तो जीवन सत्ता के सभी अंग-प्रत्यंग ठीक काम करेंगे। शरीर स्वस्थ रहेगा, मन

प्रसन्न रहेगा और अंतःकरण में सद्भाव संतोष झलकेगा। किंतु यदि इस क्षेत्र में विसंगति, विकृति उत्पन्न होने लगे तो उसकी प्रतिक्रिया आधि-व्याधियों के रूप में—विपत्तियों, विभीषिकाओं के रूप में सामने खड़ी दिखाई देंगी। रक्त दूषित हो जाने पर अनेकों आकार-प्रकार के चर्म रोग, फोड़े-फुंसी, दर्द, सूजन आदि के विग्रह उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार प्राणतत्त्व में असंतुलन उत्पन्न होने पर शारीरिक अवयवों की क्रियाशीलता लड़खड़ाती है। कई प्रकार की व्यथा, बीमारियाँ उपजती हैं। मनःक्षेत्र में उत्पन्न हुआ प्राण विग्रह—असंतुलनों, आवेगों और उन्मादों के रूप में दृष्टिगोचर होता है। भावना क्षेत्र में विकृत हुई प्राणसत्ता मनुष्य को नर-कीटकों के, नर-पिशाचों के घिनौने गर्त में गिरा देती है। पतन के अनेकों आधार प्राणतत्त्व की विकृति से संबंधित होते हैं। उनके सुधार के लिए सामान्य उपचार कारगर नहीं होते, क्योंकि उनका प्रभाव उथला होता है, जबकि समस्या की जड़ें बहुत गहरी—प्राण चेतना में घुसी होती हैं। अनुभूत और परीक्षित उपचार भी जब निष्फल सिद्ध हो रहे हों, तो समझना चाहिए कि चेतना की गहरी परतों में विक्षेप घुस गया है। चमड़ी में काँटा चुभा हो तो उसे नाखूनों की पकड़ से दबाकर बाहर निकाला जा सकता है, किंतु यदि बंदूक की गोली आँतों में गहरी घुस गई हो तो उसके लिए शल्य-क्रिया का आश्रय लिए बिना और कोई चारा नहीं।

श्रीमती जे० सी० ट्रस्ट ने एक ऐसे व्यक्ति को चुना जो छोटी-छोटी बातों में उत्तेजित हो जाता था। वह दिन में कई-कई बार क्रुद्ध हो जाने के कारण बहुत दुबला पड़ चुका था, सर्दी-गर्मी के हलके परिवर्तन भी उसको कष्टदायक प्रतीत होते, उसे कोई न कोई बीमारी प्रायः बनी रहती थी।

एक बार जब वह भरे गुस्से में था, तब श्रीमती ट्रस्ट ने उसे लिटा दिया और उसके नंगे शरीर पर बालू की हलकी परत बिछा दी। उनके शिष्य, अनुयायी और कई वैज्ञानिक भी उपस्थित थे। उन सबने बड़े कौतूहल के साथ देखा कि जिस प्रकार पानी से

भरी काँसे की थाली को बजाने से पानी की थरथरी काँसे के अणुओं में उत्तेजन और स्पंदन का अभ्यास कराती है, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर से भी प्रकाश अणु निरंतर निःसृत होते और थरथरी पैदा करते थे।

क्रोध जैसे उत्तेजनशील आवेश के समय यह प्रकाश अणु बड़ी तेजी से थरथराते हुए निकलते हैं, इसलिए उस समय तो स्पष्ट आभास हो जाता है, पर सामान्य स्थिति में प्रकाश कणों की थरथराहट धीमी होती है। जो व्यक्ति जितना अधिक शांत, कोमल-चित्त, मधुर स्वभाव मितभाषी, स्थिर बुद्धि होता है, उसके सूक्ष्म शरीर के प्रकाश अणु बहुत धीरे-धीरे निकलते हैं और बहुत समय तक शरीर में शक्ति, उष्णता और सहनशीलता बनाए रखते हैं। ऋतुओं के आकस्मिक परिवर्तन भी शरीर पर दबाव नहीं डाल पाते।

जीव विज्ञानियों को यह बात बहुत दिन से मालूम थी कि शरीर में जाल की तरह फँसे हुए ज्ञान तंतु मस्तिष्क तक कायागत जानकारियाँ पहुँचाते हैं और मस्तिष्क की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए आवश्यक निर्देश देते हैं, तदनुसार अवयव अपना-अपना काम करते हैं। पर यह सब होता किस पद्धति से है ? इस रहस्य पर पर्दा ही पड़ा हुआ था। ज्ञान तंतु स्पर्शानुभव क्षण भर में मस्तिष्क तक पहुँचना किस आधार पर संभव होता है ? इसका कुछ पता नहीं चल पा रहा था।

पिछले ४० साल से इस संदर्भ में बहुत प्रयोग चल रहे थे। बीस वर्ष से तो जीव भौतिकी की इस शाखा पर और भी अधिक ध्यान दिया गया। अंत में बहुत लंबे प्रयोग परीक्षणों के उपरांत इस रहस्य पर से पर्दा उठाने में तीन वैज्ञानिक सफल हो गए और उन्हें इस शोध के उपलक्ष्य में चिकित्साशास्त्र का नोबल पुरस्कार मिला। इन तीनों के नाम हैं—(१) हाजकिम, (२) हक्सले, (३) एकल्स।

इस त्रिगुट ने ज्ञान-तंतुओं में एक विद्युत आवेग (इंपल्स) की खोज की है और बताया कि यह बिजली किस तरह तंतुओं और

मस्तिष्कीय कोषों के बीच दौड़ती है और टेलीफोन की तरह स्थिति का संवाद संकेत पहुँचाती लाती है। ज्ञान तंतु एक प्रकार के बिजली के तार हैं, जिन पर विद्युतीय आवेगों के साथ संदेश दौड़ते रहते हैं। एक-एक तंतु की लंबाई कई-कई फुट होती है। सब मिलाकर पूरे शरीर में इनकी लंबाई एक लाख मील से भी अधिक होती है। इनकी मोटाई एक इंच के सौवें भाग से भी कम होती है।

हमारे मस्तिष्क में लगभग १० अरब नस कोष्ट (न्यूरान) हैं। उनमें से हर एक का संपर्क लगभग २५ हजार अन्य नस कोष्टों के साथ रहता है। इतनी छोटी-सी खोपड़ी में इतना बड़ा कारखाना किस प्रकार संजोया जमाया हुआ है, इसे देखकर बनाने वाले की कारीगरी पर चकित रह जाना पड़ता है। यदि मनुष्य इतना साधन संपन्न इलेक्ट्रॉनिक मस्तिष्क बनाकर खड़ा करना चाहे तो प्रस्तुत विद्युत् उपकरणों के आधार पर इस कारखाने के लिए इस धरती जितनी जगह घेरने की आवश्यकता पड़ेगी।

ज्ञान-तंतुओं से प्रवाहित होने वाले विद्युत् आवेग एक सैकिंड में ३०० फुट प्रति सैकंड के हिसाब से दौड़ते हैं। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इस मानवी विद्युत् की चाल इतनी कम क्यों है ? जबकि टेलीफोन व्यवस्था के अनुसार शुद्ध बिजली प्रति सैकंड १,८६,२८२ मील के हिसाब से दौड़ती हैं। इसका उत्तर यह है कि टेलीफोन में विशुद्ध बिजली रहती है, जबकि ज्ञान-तंतुओं में एकाकी विद्युत् संचार नहीं, उसके साथ रासायनिक क्रिया-कलाप भी जुड़ा होता है।

आवेग नस-संपर्क (साइनेप्स) अगले कोष्ठीय भाग के बीच की खाली जगह को लांघकर सामने के कोष्ठीय भाग तक, आवेग, उत्तेजन के क्रम से आगे बढ़ता है। इन आवेग-अवरोधों को अंतर्वाधन (इन्हिविशन) कहते हैं। नस रेशों के अंदर ऋण विद्युत् रहती है, उसके बाहर योग विद्युत्। इनमें सोडियम और पोटैशियभ की विद्यमान मात्रा रासायनिक उपयुक्तता बनाए रखती है। इसी प्रक्रिया में संबद्ध एक ऐसा रासायनिक पदार्थ है—ट्रांसमिशन

सब्स्टेंस। विद्युत् कणों और रासायनिक पदार्थों की सम्मिश्रित प्रक्रिया ही इस कायागत संचार व्यवस्था को गतिशील बनाए हुए है। इस तथ्य के रहस्योद्घाटन से वैज्ञानिकों की कैथोड के आसिलोग्राफ-आइसोटोप टेक्निक तथा अन्य कतिपय प्रक्रियाओं को अपनाना पड़ा। अब ज्ञान-तंतुओं से प्रवाहित विद्युत् आवेगों की यथार्थता और उनकी गतिविधियों के बारे में इतनी जानकारी उपलब्ध है, जिससे शंका का समाधान कहकर संतोष किया जा सके।

निस्संदेह मनुष्य एक जीता-जागता बिजलीघर है। झटका मारने वाली और बत्ती जलाने वाली स्थूल बिजली की अपेक्षा वह असंख्य गुनी परिष्कृत और संवेदनशील है। जड़ और चेतन की शक्तियों में यह अंतर तो रहना ही चाहिए। जड़ बिजली का भावनाओं से कोई संबंध नहीं। वह कसाई और संत का भेद नहीं करती, जो भी उससे काम ले सके उसकी विधि व्यवस्था पूरी कर सके, उसका उत्तेजन पूरा करने लगती है। उचित-अनुचित का भेदभाव कर सकने लायक संवेदना उसमें है ही नहीं।

मानव शरीर में संव्याप्त विद्युत् में चेतना और संवेदना के दोनों तत्त्व विद्यमान हैं। इसलिए उसे मात्र नाड़ी जाल समुत्पन्न या संव्याप्त ही कहकर सीमित नहीं कर सकते। भले ही वह ज्ञान तंतुओं के माध्यम से समस्त शरीर पर शासन करती हो, भले ही उसका प्रत्यक्ष केंद्र मस्तिष्क में अवस्थित प्रतीत होता है, पर सही बात यह है कि वह आत्मा की प्राण प्रतिमा है और उसकी भावनात्मक स्थिति से प्रभावित होती है। मनुष्य का अंतरंग जैसा भी कुछ होता है, उसके अनुरूप इस चेतन विद्युत् की दुर्बलता अथवा सशक्तताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

किसी के शरीर को छूने से प्रत्यक्ष झटका लगे, इस स्तर का अनुभव इस कायिक विद्युत् का नहीं होता, इसलिए मोटे विद्युत् उपकरणों से वह देखी समझी नहीं जाती। उसका भौतिक स्वरूप जानना हो तो उन उपकरणों की आवश्यकता पड़ेगी, जो नोबेल

पुरस्कार विजेता हाजनिक जैसे वैज्ञानिकों ने इस संदर्भ में प्रयुक्त किये थे। पर भावनात्मक स्पर्श से इसका प्रभाव दूसरे लोग भी अनुभव कर सकते हैं। किसी उच्च मनोभूमि के व्यक्ति के पास बैठने से अपनी मनोभूमि में उसी तरह की हलचल उत्पन्न होती है और दुष्ट दुराचारियों की संगति में मन, बुद्धि तथा इंद्रिय-संवेदनाओं में उसी तरह का उत्तेजन आरंभ हो जाता है। व्यभिचारियों के सान्निध्य में बैठने से अकारण ही दुराचार का आकर्षण मन में उठने लगता है। सत्संग की महत्ता का जो प्रतिपादन अध्यात्मशास्त्र में किया गया है, उसका कारण मात्र शिक्षा प्राप्ति नहीं है, वरन् यह भी है कि उन महापुरुषों के शरीर से निकलने वाले और समीपवर्ती क्षेत्र में फैलने वाले विद्युत्-प्रवाह की ऊर्जा से लाभ उठाया जाए।

चरण स्पर्श की प्रथा के पीछे यही रहस्य है कि तेजस्वी व्यक्तियों के शरीर का स्पर्श करके, उनके विद्युत् का एक अंश ग्रहण किया जाए। ताप का मोटा नियम यह है कि अधिक ताप अपने संस्पर्श में आने वाले न्यून ताप उपकरण की ओर दौड़ जाता है। एक गरम-एक ठंडा लौह खंड सटा दिया जाए, तो ठंडा गरम होने लगेगा और गरम ठंडा। वे परस्पर अपने शीत ताप का आदान-प्रदान करने लगेंगे। ऐसा ही लाभ चरण स्पर्श से होता है। अधिक सामर्थ्यवानों का लाभ स्वल्प सामर्थ्यवानों को मिलने में शरीर स्पर्श की प्रक्रिया बहुत कारगर होती है।

गुरुजनों का स्नेह से छोटों के सिर पर हाथ फिराना, पीठ थपथपाना जैसा वात्सल्य प्रदर्शन यों भावनात्मक ही दीखता है, पर इसमें भी यह विद्युत् संचार की क्रिया-प्रक्रिया सम्मिलित है। इस प्रकार बड़े अपने से छोटों को एक महत्त्वपूर्ण अनुदान देते रहते हैं।

चिड़िया अपने अंडे को छाती के नीचे रखकर सेती है। उसमें केवल गर्मी पहुँचाना ही नहीं, परंपरागत प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करना भी एक प्रयोजन है। चिड़िया की शारीरिक विद्युत् अंडे-बच्चों में जाकर उन्हें पैतृक संस्कारों से युक्त करती है। मशीन से अंडे गरम करके

भी उसमें से बच्चा निकल सकता है, पर उसमें कितनी ही संस्कारजन्य कमियाँ रह जाती हैं। जिन बच्चों को धाय पालती और दूध पिलाती है, परंतु उससे माता का दूध, लाड़, दुलार, गोदी में खिलाना, पास सुलाना जैसा अनुदान नहीं मिलता, वे बालक भी मानसिक दृष्टि से बहुत त्रुटिपूर्ण रह जाते हैं। समर्थ विद्युत् भी दुर्बल क्षमता वालों का बहुत कुछ पोषण करती है।

साधना काल में रह रहे साधक अपना चरणस्पर्श किसी को नहीं करने देते, वे आशीर्वाद रूप से किसी के सिर पर हाथ भी नहीं रखते। इसमें उनकी स्वल्प शक्ति का एक अंश दूसरों के पास चले जाने और अपने लिए घाटा पड़ने वाली आशंका ही सन्निहित है।

ब्रह्मचर्य, पतिव्रत, पत्नीव्रत आदि के पीछे सामाजिक, पारिवारिक कारणों के अतिरिक्त आध्यात्मिक कारण भी हैं। शारीरिक विद्युत् आवेग नेत्रों में वाणी में, हाथ की उँगलियों में अधिक पाया जाता है और वहाँ से वह बाहर फैलता है। सूक्ष्म रूप से मस्तिष्क में और स्थूल रूप से यह विद्युत् जननेंद्रिय में अत्यधिक मात्रा में पाई जाती है। मस्तिष्क में सन्निहित बिजली तो अध्ययन, चिंतन, ध्यान आदि मनोयोग संबंधित कार्यों में लगती है, पर जननेंद्रिय विद्युत् तो स्पर्श के माध्यम से बहिर्गमन के लिए व्याकुल रहती है। यही कामोत्तेजना का वैज्ञानिक स्वरूप है।

महापुरुष ब्रह्मचर्य का अत्यधिक ध्यान इसलिए रखते हैं कि कामोपभोग जैसे क्षणिक सुख में अपने महत्त्वपूर्ण उपार्जन को खो न बैठें। इससे दुर्बल पक्ष लाभान्वित हो सकता है, पर सबल पक्ष की हानि तो प्रत्यक्ष है। तपस्या के अनेक विघ्नों में एक बड़ा विघ्न यह है कि मानवी अथवा दैवी 'रयि तत्त्व' जननेंद्रिय के माध्यम से उनकी शक्ति का लाभ लेने की चेष्टा करता है। विश्वामित्र, पाराशर व्यास आदि की तप-साधना के बीच काम-स्खलन इसी खींच-तान का प्रमाण है। भगवान् बुद्ध के चित्रों में ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में अनेक अप्सराएँ उनके समीप नृत्य, परिहास करती दिखाई जाती हैं। इसके पीछे यही संकेत है। आत्म विद्युत् संपन्न पति-पत्नी अति

उच्च कोटि की संतान उत्पन्न कर सकते हैं। भगवान् कृष्ण ने रुक्मिणी सहित तीव्र तप बद्रीनारायण में करने के उपरांत एक ही पुत्र पैदा किया था—प्रद्युम्न; जो कृष्ण के समान ही रूप, गुण आदि विशेषताओं से संपन्न था। लोग पहचान तक न पाते थे कि इनमें कौन-सा कृष्ण है और कौन प्रद्युम्न ? तपस्वियों की ऋषि संतानें अपने जनक-जननी के समतुल्य ही प्रभावशाली होते रहे हैं।

महापुरुष इस संचित विद्युत् भंडार को काम-कौतुक में खर्च करने की अपेक्षा उस क्षमता को मस्तिष्कीय तथा अन्य ज्ञानेंद्रिय द्वारा असंख्य व्यक्तियों की सेवा करने में बुद्धिमत्ता अनुभव करते हैं और ब्रह्मचारी रहते हैं। यही बात महिलाओं के संबंध में है। तेजस्वी और मनस्वी बनने के लिए उन्हें भी ब्रह्मचर्य द्वारा शक्ति संचय के मार्ग पर चलना होता है।

कायिक विद्युत् दूसरों का हित साधन करती है, अपना भी। प्रश्न सदुपयोग की सूझ-बूझ और योग्यता का है। यह बिजली यों ही शरीर और मन से खर्च होती रहती है और अस्त-व्यस्त बिखरती रहती है। यदि इसे केंद्रित कर लिया जाए और शारीरिक-मानसिक एवं आत्मिक उत्कर्ष के लिए प्रयुक्त किया जाए तो हर क्षेत्र में आशाजनक प्रगति हो सकती है। बिजलीघर में विद्युत् उत्पादन का समुचित लाभ उसे किसी प्रयोजन के लिए नियोजित करके ही उठाया जा सकता है। साधारणतया यह कायिक विद्युत् भंडार दैनिक जीवनयापन में ही थोड़ा बहुत काम आता है और शेष ऐसे ही बिखर जाता है। साधना विज्ञान के आधार पर यदि उसका सदुपयोग सीखा जाए और अभीष्ट प्रयोजन के लिए उसे नियोजित करने का क्रिया-कलाप समझा जाए, तो अपने निज के इस संपत्ति कोष से मनुष्य सर्वांगीण समृद्धि से सुसंपन्न हो सकता है। सफल जीवन जी सकता है।

प्राण-साधना योगशास्त्र की सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसके लाभों का विस्तार, अणिमादि अगणित ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में किया गया है और ब्रह्मतेजस् के रूप में उसकी आध्यात्मिक

उपलब्धियों की चर्चा की गई है। प्राणायाम इस दिशा में प्रथम सोपान है। दुर्बल-विकृत प्राण को बहिष्कृत कर, उसके स्थान पर महाप्राण की स्थापना करना इस साधना का लक्ष्य है। संध्या-वंदन जैसे नित्यकर्मों का उसे अनिवार्य आधार इसलिए बनाया गया है कि इस प्रकार प्रारंभिक परिचय तथा अभ्यास करते हुए क्रमशः आगे बढ़ा जाए और प्राणवान बनते हुए जीवन लक्ष्य को पूर्ण करने की दिशा में अनवरत् रूप से गतिशील रहा जाए।

प्राणतत्त्व समस्त भौतिक और आत्मिक संपदाओं का उद्गम केंद्र है। वह सर्वत्र संव्याप्त है। उसमें से जो जितनी अंजलि भरने और देने में समर्थ होता है, वह उसी स्तर का महामानव बनता चला जाता है। प्राण शक्ति का पर्यायवाची है। उसकी परिधि में भौतिक संपदाएँ और आत्मिक विभूतियाँ दोनों ही आती हैं।

शारीरिक परिपुष्टि के रूप में ओजस्वी, मनोबल संपन्नता के रूप में मनस्वी, सामाजिक सहयोग-सम्मान के रूप में यशस्वी और आत्मिक उत्कृष्टता के रूप में तेजस्वी बन जाता है। यह चतुर्विध क्षमताएँ जिस मूल स्रोत से उत्पन्न होती हैं, उसे प्राण शक्ति कहते हैं। प्राण साधना इन्हीं सिद्धियों का प्राप्त कर सकना संभव बनाती है।

❑ ❑

सूक्ष्म शरीर की अनुभूति—प्राणायाम से

※

प्राणायाम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए स्वामी विवेकानंद ने एक बार एक कथा सुनाई। एक राजा ने किसी बात पर अप्रसन्न होकर अपने मंत्री को बंदी बनाकर किले में कैद कर दिया। मंत्री किसी तरह किले से भाग निकलना चाहता था, अपनी इच्छा उसने भेंट के लिए आई अपनी धर्मपत्नी से प्रकट की। कठोर पहरे के कारण कोई युक्ति समझ में नहीं आ रही थी।

मंत्राणी ने तब एक युक्ति खोज निकाली। एक गुबरैला की पीठ पर एक तिनके को इस तरह चिपकाया कि उसका एक किनारा गुबरैला के मुँह के ठीक सामने आ जाता था। तिनके के सिरे पर शहद लगाकर, उसे किले की दीवार पर रख दिया गया। उसकी पूँछ में रेशम का धागा बाँध दिया। शहद देखकर गुबरैला के मुँह में पानी भर आया। वह शहद चाटने के लिये चल पड़ा। शहद उतना ही आगे बढ़ता जाता। इस तरह कीड़ा लगातार ऊपर चढ़ता चला गया। दीवार की ऊँचाई चढ़ जाने के बाद उतरने का क्रम प्रारंभ हुआ। कीड़ा किले के नीचे उतर गया। इधर मंत्राणी रेशम के धागे को क्रमशः मोटा और मजबूत लगाती गई। जब धागा मंत्री के हाथ पहुँच गया, तब उसने मोटा रस्सा बाँध दिया। मंत्री ने रस्सा खींच लिया और पहरा लगा रहा, वह उस रस्से के सहारे बाहर निकल गया।

"प्राणायाम" वस्तुतः एक ऐसी ही साधना है, जिसमें प्रारंभ श्वास खींचने धारण करने से ही होता है और अंत प्राण की अनुभूति प्राणतत्त्व के नियंत्रण द्वारा मिलने वाली असंख्य सिद्धियों सामर्थ्यों के रूप में होती है। प्रारंभिक प्राणायाम बहुत सरल और सर्व-सुलभ ही बताए जाते हैं पर कुछ प्राणायाम ऐसे भी हैं, जिनके अभ्यास से हनुमान जैसी समुद्र लाँघ जाने, उड़कर पर्वत में पहुँच जाने, अंगद की तरह पाँव टिका देने, मशक और पर्वताकार बना

लेने जैसी क्षमताएँ भी मिलती हैं, किंतु यदि उस कठिन स्थिति तक पहुँचना संभव न भी हो तो भी सामान्य जीवन में मिलने वाले लाभ भी निश्चित रूप से ऐसे मिलते हैं, जिनसे सांसारिक जीवन बहुत अधिक सफल, सुखद बनाया जा सकता है।

मनुष्य की आयु, आरोग्य और स्वास्थ्य का श्वास क्रिया से बड़ा संबंध है। श्वास-प्रश्वास की क्रिया से प्राणी मात्र जीवित रहते हैं। स्वच्छ वायु फेंफड़ों में जाकर रोग-वर्द्धक कीटाणुओं का नाश करती है। इसी से रक्त की सफाई होती है। जब तक रक्तकण तेज सशक्त व सजीव रहते हैं, तब तक स्वास्थ्य में कोई खराबी नहीं आती। शारीरिक शक्ति, विचार-शक्ति और मानसिक दृढ़ता प्राणायाम के प्रत्यक्ष चमत्कार हैं। इससे केवल फेंफड़ों का व्यायाम ही नहीं होता वरन् प्राणायाम आयु, बल को बढ़ाने वाला, रक्त-शोधक और मन को शक्ति व स्फूर्ति प्रदान करने वाला है। यह प्रत्येक स्वस्थ जीवन की कामना रखने वालों के लिए एक उपयोगी साधन है।

प्राणायाम की प्रारंभिक शिक्षा यह है कि हमें पूरी और गहरी साँस लेनी चाहिए। यह साँस पूरी तौर पर यदि फेंफड़ों में न गई तो फेंफड़ों का एक भाग बिलकुल बेकार पड़ा रहता है। घर के जिस भाग की सफाई नहीं की जाती; वहाँ मकड़ी, छिपकली, कनखजूरे, बर्रे आदि अपना अड्डा जमा लेती हैं। फेफड़े के जिस भाग में वायु का अभिगमन नहीं हो पाता उसमें जुकाम, खाँसी, क्षय, कफ व दमा आदि के कीटाणु पैदा हो जाते हैं। धीरे-धीरे वे वायु कोष्ठों में इस प्रकार अड्डा जमा लेते हैं कि इनका निकालना ही मुश्किल हो जाता है।

भरपूर साँस लेने से फेफड़ों के सभी वायु-कोटर हवा से भर जाते हैं। यह हवा अपनी ऑक्सीजन-प्राण रक्त में छोड़ देती है और दूषित पदार्थ कारबोलिक एसिड को चूसकर बाहर निकाल देती है। यह ऑक्सीजन तत्त्व खून के साथ मिलकर सारे शरीर का दौरा करता रहता है, जिससे शक्ति, स्वास्थ्य व आरोग्य स्थिर बना

रहता है। शुद्ध खून का एक चौथाई भाग ऑक्सीजन होता है। इस मात्रा में यदि कमी पड़ जाए तो इसका पाचन-प्रणाली पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। ऐसे व्यक्तियों की जठराग्नि मंद पड़ जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दूषित पदार्थ निकालने, रक्त में ऑक्सीजन का पर्याप्त सम्मिश्रण रखने तथा पाचन-संस्थान को मजबूत बनाए रखने के लिए गहरी पूरी साँस लेना अनिवार्य है। यह क्रिया प्राणायाम के द्वारा पूरी होती है।

बॉइलर की पुरानी राख गिराई न जाए तो भाप बनना बंद हो जाता है। इससे इंजन का काम रुक जाता है। हमारे फेफड़े ठीक बॉइलर का काम करते हैं। इससे इंजन अर्थात् हृदय की क्रिया प्रभावित होती है। दूषित मल-विकार जो रक्त के साथ हृदय से फेफड़ों में पहुँचाया जाता है, उसकी पूरी व गहरी साँस द्वारा सफाई न कर दी जाए तो फिर वही अशुद्ध रक्त हृदय को लौट आता है। यह गंदगी धमनियों द्वारा शरीर में फैल जाती है और बीमारी, रोग व दुर्बलता के रूप में फूट पड़ती है। किंतु पूरी साँस का यदि अभ्यास डाल दें, तो इससे छाती चौड़ी होती है। फेफड़े मजबूत होते हैं और वजन बढ़ता है। शुद्ध रक्त-संचार से हृदय की दुर्बलता दूर होने लगती है। इसलिए प्राणायाम द्वारा गहरी साँस लेने का अभ्यास बना लेना स्वास्थ्य के लिए अतीव लाभदायक होता है।

साधारण अवस्था में साँस के साथ ३० घन इंच हवा फेफड़ों में पहुँचती है। इससे अधिक गहरी साँस लें तो कुल मिलाकर १३० घन इंच तक वायु फेफड़ों में पहुँच जाती है, किंतु साँस छोड़ते समय १०० घन इंच वायु छाती में रह जाती है। इस प्रकार कुल २३० घन इंच की जगह शरीर में होती है। तात्पर्य यह है कि साधारण साँस की अपेक्षा आठ गुना साँस ली जा सकती है। इससे आठ गुना ऑक्सीजन शरीर को मिलेगा तो आठ गुना स्वास्थ्य का सुधार भी होगा ही।

जो लाभ अधिक से अधिक साँस फेंफड़ों में पहुँचाने से होता है, ऐसा ही एक लाभ फेफड़ों को कुछ देर वायुरहित छोड़ने से भी

होता है। एक जर्मन यहूदी डॉक्टर का मत है कि इससे फेफड़ों के कीटाणु वायु न मिलने से मर जाते हैं और कारबोलिक एसिड के साथ मिलकर बाहर निकल जाते हैं।

दूसरा अभ्यास नाक से साँस लेने का होता है। नाक से साँस लेने से वायु में मिले स्थूल गंदगी के कण नाक के छोटे-छोटे बालों में रुक जाते हैं। इससे आगे एक पतला तरल पदार्थ स्रावित हुआ करता है, जो शेष गंदगी को जैसे नाइट्रोजन व धूल आदि के कणों को चिपका लेता है। अब वायु पूरी तौर पर स्वच्छ होकर श्वास-नली में प्रवेश करती है। यहाँ यदि वायु गर्म थी तो शीतल और अधिक शीतल थी, तो गर्म होकर सामान्य तथा सह्य ताप में परिवर्तित हो जाती है। वायु अभिगमन का यह मार्ग जो नाक से मस्तिष्क के रास्ते फेफड़ों तक पहुँचता है, काफी लंबा पड़ जाता है। इतनी देर में वायु का तापमान सह्य हो जाता है। इससे फेफड़ों में पहुँचकर रक्त शुद्धि के कार्य में उसे कोई बाधा नहीं पड़ती, पर मुँह से साँस लेने से गंदगी भी श्वास-नली के रास्ते फेंफड़ों में पहुँच जाती है और ताप भी शीतल गर्म जैसा कुछ था, वैसे ही फेंफड़ों को उत्तेजित करता रहता है। चेचक की बीमारी व जुकाम आदि से पीड़ित रहने वाले अधिकांश मुँह से साँस लेने वाले लोग होते हैं।

प्राणायामों के अनेकों भेद हैं। शीतली, शीतकारी, भ्रामरी, उज्जायी, लोम-विलोम, सूर्य-वेधक, प्राणाकर्षक तथा नाड़ी-शोधन आदि अनेकों प्राणायाम की विधियाँ भारतीय अध्यात्म ग्रंथों में भरी पड़ी हैं। इन सबका उल्लेख तो यहाँ संभव नहीं है, जो सर्व-सुलभ और सर्वथा हानिरहित है; जिन्हें बालक, वृद्ध, स्त्री व पुरुष कोई भी कर लें, ऐसे ही प्राणाकर्षण प्राणायाम की विधि यहाँ दी जाती है।

प्राणायाम के चार भाग हैं—(१) पूरक (२) अंतर कुंभक (३) रेचक तथा (४) बाह्य कुंभक। साँस को खींचकर भीतर धारण करने को पूरक कहते हैं। यह क्रिया तेजी या झटके के साथ नहीं की जानी चाहिए। धीरे-धीरे फेंफड़ों में जितनी साँस भर सकें, इस क्रिया को पूरक कहते हैं। अंतर कुंभक-वायु को भीतर रोके रहने

को कहते हैं। जब तक सरलतापूर्वक रोके रख सकें उतनी ही देर अंतर कुंभक करते हैं। जबर्दस्ती प्राण-वायु को नहीं रोकना चाहिए। धीरे-धीरे समय बढ़ाने का अभ्यास किया जा सकता है। वायु को बाहर निकालने को रेचक कहते हैं। पूरक के समान ही यह क्रिया भी धीरे-धीरे करनी चाहिए। साँस एकदम या झटके के साथ छोड़ना ठीक नहीं होता। इसके बाद बाहर की भी साँस रोक कर बाह्य कुंभक है अर्थात् कुछ देर बिना साँस के रहते हैं। पूरक और रेचक के समय, बाह्य-कुंभक और अंतर-कुंभक का समय समान होना चाहिए।

अभ्यास करने के पूर्व किसी स्वच्छ पवित्र व शांत स्थान पर आसन, तख्त या कंबल आदि पर पूर्वाभिमुख बैठें। स्थान जितना ही एकांत हो उतना ही अच्छा है, ताकि बाहरी शोरगुल से अपनी एकाग्रता भंग न हो। पालथी मारकर सरल पद्मासन पर बैठिये। दाएँ हाथ के अँगूठे से नासिका के दाएँ छिद्र को बंद कर बाएँ से पूरक कीजिए। फिर मध्यमा तथा अनामिका उँगलियों से बाएँ छिद्र को भी बंद कर अंतर-कुंभक पूरा कीजिए। अब दाएँ छिद्र से अँगूठे को हटाकर रेचक कीजिए, फिर दूसरी बार जैसी क्रिया की थी! दोनों नासिका छिद्र बंद करके बाह्य-कुंभक कीजिए। यह आपका एक प्राणायाम हुआ। आरंभ में पाँच प्राणायाम करें, धीरे-धीरे आधा घंटा तक समय बढ़ा सकते हैं।

स्वास्थ्य के साथ-साथ प्राणायाम आत्मोन्नति का भी एक महत्त्वपूर्ण व उपयोगी साधन है। इससे प्राण-साधना के साथ ही साथ चित्त की एकाग्रता, स्थिरता, दृढ़ता और मानसिक गुणों का विकास होता है। आगे चलकर प्राणायाम से प्राण पर नियंत्रण प्राप्त करते हैं और शरीरस्थ प्राणों को जाग्रत् करते हैं। इनका स्वास्थ्य पर विलक्षण प्रभाव पड़ता है, जिसे एक प्रकार से चमत्कार ही माना जा सकता है। हमारे यहाँ इस संबंध में बड़ी तत्परतापूर्वक खोज की गई है।

भौतिकी के छात्र जानते हैं कि घर्षण से ऊर्जा उत्पन्न होती है। दियासलाई घिसने से लेकर विशालकाय जेनरेटरों द्वारा आग या विद्युत् उत्पन्न होने के कारणों में घर्षण ही मुख्य है। निर्जन सुनसान जंगलों में कई बार भयंकर आग लगती है और विस्तृत क्षेत्र के गीले-सूखे पेड़ों को जलाकर खाक कर देती है। यह मनुष्यों द्वारा लगाई गई नहीं होती। वह आग सूखे पेड़ों की टहनियों के तेज हवा से हिलने और आपस में रगड़ने के कारण उत्पन्न होती है। इस कार्य में बाँस सबसे अग्रणी है। सूखे बाँस आपस में रगड़ खाकर पहले गरम होते हैं, फिर चिनगारियाँ निकालने लगते हैं। यह आग बढ़ती फैलती चली जाती है और दावानल का रूप धारण कर लेती है। यह घर्षण के सिद्धांत का ही चमत्कार है।

चकमक पत्थर के दो टुकड़े आपस में टकराकर चिनगारियाँ उत्पन्न करने की कला ही आदि मानव ने सीखी थी, पीछे लोहे और पत्थर को टकराकर भी आग निकालने की तरकीब निकाल ली गई। यज्ञ कार्यों में लकड़ियाँ रगड़कर अरणि-मंथन की क्रिया द्वारा अग्नि उत्पन्न की जाती थी। चेतना और पदार्थ—ब्रह्म और प्रकृति के उद्गम स्रोत में देखा गया है कि वे परस्पर टकराते-घिसते हैं, फलतः शब्द रूप में ऊर्जा उत्पन्न होती है और उसके सहारे सृष्टि क्रम चल पड़ता है। हवा चलती है, विभिन्न पदार्थों से टकराती है, समुद्र में लहरें उठती-गिरती हैं, मनुष्य शरीर में श्वास-प्रश्वास और आकुंचन-प्रकुंचन चलता है, फलतः घर्षण चलता है और ऊर्जा उत्पन्न होती है, उसी के अपने-अपने प्रयोजन हर स्थान पर चल पड़ते हैं। पदार्थों और प्राणियों में चलती रहने वाली हलचलों को घर्षण की उत्पत्ति ही कहा जा सकता है।

साधारण श्वास-प्रश्वास क्रिया से जीवनचर्या चलती है। पेंडुलम हिलना बंद हो जाए, तो घड़ी के सारे पुर्जे ठप्प हो जाते हैं। साँस रुकी तो मरण निश्चित है। घर्षण बंद तो जीवन भी समाप्त। साँस के साथ जीवन जुड़ा हुआ है, क्योंकि प्रत्यक्षतः ऊर्जा की उत्पत्ति उसी से होती है, यों गहराई में जाने पर सहस्रार से उठने

वाले विद्युत् स्फुलिंग भी उसके मूल कारण समझे जाते हैं। वहाँ भी रुक-रुककर उछलने की क्रिया ही घर्षण उत्पन्न करती है।

अधिक सशक्तता प्राप्त करने के लिए हमें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। बड़ा कारखाना चलाने के लिए बड़ी मशीनें गतिशील बना सकने वाली बड़ी मोटर फिट करनी पड़ती है। छोटी मोटरें तो छोटी मशीन ही चला पाती हैं। महत्त्वपूर्ण शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक कार्य करने के लिए अधिक उच्चस्तरीय ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। यह खाने-पीने या आग तापने जैसे प्रयत्नों से नहीं वरन् वहाँ से प्राप्त करनी होती है, जहाँ चेतना और पदार्थ दोनों को प्रभावित करने वाली क्षमता का उद्गम है। कहना न होगा कि यह आधार 'प्राण' ही है। प्राण वह तत्त्व है जो अंतरिक्ष में जीवन और पदार्थ दोनों की संयुक्त शक्ति के रूप में प्रवाहित रहता है। शुद्ध चेतना ब्रह्म है। प्रशुद्ध प्रकृति ऊर्जा है। दोनों ही अपने मूल रूप में अपूर्ण हैं। प्राणी जगत् की उत्पत्ति इन दोनों धाराओं के मिलने पर ही संभव होती है। इसीलिए जीवधारियों को प्राणी कहते हैं। विज्ञान के बढ़ते हुए चरण परमाणु, परमाणु से तरंग, तरंग से ऊर्जा, ऊर्जा से क्वांटा तक जा पहुँचना है। इकालाजी की मान्यताओं में क्वांटा को विचारशील होने की मान्यता अब तक मिलने ही वाली है। आकाश, आकाश में—हवा, हवा में—ईथर, ईथर में एस्ट्रल तक की मान्यता मिल चुकी है। अब विज्ञान प्राण सत्ता के महासमुद्र को इस लिखित ब्रह्मांड में लहलहाता देखने की स्थिति में पहुँचने ही जा रहा है।

प्राणतत्त्व का अस्तित्व तत्त्वदर्शी ऋषियों ने बहुत पहले ही जान लिया था। प्रकृति अनुदानों की सीमित मात्रा से काम चलते न देखकर विशेष प्रयोजनों के लिए उसकी विशिष्ट मात्रा उपलब्ध करने का मार्ग भी खोज निकाला था। इसे उन्होंने प्राण विज्ञान का नाम दिया था। उसके प्रयोग प्राणायाम कहलाए। प्राणायाम का उद्देश्य सांस के मार्ग से अधिक मात्रा में प्राणतत्त्व को आकर्षित करना और आत्म-सत्ता में धारण करके अधिक सशक्त बनना है।

यहाँ साँस और प्राण का पारस्परिक संबंध तनिक और अच्छी तरह समझने की आवश्यकता है।

मोटेतौर से हवा एक हलकी गैस है, जो अंतरिक्ष की पोल में अपने हलकेपन के कारण तनिक-तनिक से आघातों से ठोकरें खाकर इधर से उधर उड़ती-उछलती फिरती है। इस हवा के अंतराल में बहुत-सी महत्त्वपूर्ण एवं बहुमूल्य वस्तुएँ समाई हुईं हैं। दूध में घी रहता है—पर दीखता नहीं। वनस्पतियों में प्रोटीन, क्षार, चिकनाई आदि रहते हैं। मांस के भीतर ढेरों प्रकार के रासायनिक पदार्थ रहते हैं। इन्हें विशेष विश्लेषण से ही जाना और विशेष उपायों से ही निकाला जा सकता है। इसी प्रकार हवा के भीतर भी बहुत कुछ भरा पड़ा है। साँस लेते समय ऑक्सीजन, नाइट्रोजन आदि का रासायनिक सम्मिश्रण हमारे भीतर प्रवेश करता है। उसमें से जो आवश्यक है, उसे शरीर सोख लेता है और भीतर से उत्पन्न कचरे को वापिस लौटने वाली साँस में कार्बन डाइऑक्साइड गैस के रूप में बहा देता है। इस प्रकार साँस का विश्लेषण किया जाए तो प्रवेश करते और निकलते समय की उसकी स्थिति में रासायनिक सम्मिश्रणों की दृष्टि से भारी अंतर आ जाता है । भिन्न-भिन्न स्थानों की जलवायु में जो स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली स्थिति होती है, उसका कारण इस रासायनिक सम्मिश्रण की मात्रा में न्यूनाधिक का अंतर होना ही है। पदार्थ ठोस, प्रवाही और वायुभूत बनता-बदलता रहता है। पृथ्वी पर ठोस—पानी में प्रवाही और हवा में गैस रूप में पदार्थ की सत्ता बनी है। इतना समझने के उपरांत यह जानना सरल पड़ेगा कि हवा में ऑक्सीजन जैसे रासायनिक पदार्थ ही नहीं, उसके गहन अंतराल में प्राणतत्त्व की प्रचुर सत्ता भी विद्यमान रहती है। यह साँस के साथ अनायास भी शरीर में प्रवेश करता रहता है। शरीर उसमें से काम चलाऊ मात्रा सोखता भी है। साँस के घर्षण से ऊर्जा की उत्पत्ति और हवा के साथ घुले हुए ऑक्सीजन जैसे रासायनिक पदार्थों की ही नहीं, प्राण शक्ति की उपलब्धि का भी लाभ मिलता रहता है। जीवन का

आधार साँस पर अवलंबित कहा जाता है। इसके पीछे घर्षण एवं प्राण अनुदान से अभीष्ट ऊर्जा की उपलब्धि का तथ्य ही काम कर रहा होता है।

प्राणायाम में साँस की गति में असामान्य व्यतिक्रम निर्धारित है। इसमें घर्षण का असामान्यक्रम उत्पन्न होता है और उसकी प्रतिक्रिया 'निर्वाह' की आवश्यकता पूरी करने से आगे बढ़कर शरीर में विशेष हलचलें उत्पन्न करती है। वे असामान्य हलचलें ऐसे प्रसुप्त संस्थानों को जगाती हैं, जो सामान्यतया निर्वाह क्रम में तो अधिक आवश्यक नहीं होते, पर जागृत होने पर मनुष्य में विशेष स्तर की, अतिरिक्त मात्रा में, विशेष क्षमता प्रदान कर सकते हैं। प्राणायाम-साँस की गति को तीव्र करना नहीं, उसे तालबद्ध और क्रमबद्ध करना है। इस ताल-लय और क्रम के हेर-फेर के आधार पर ही अनेक प्रकार के प्राणायाम बने हैं और उनके विविध प्रयोजनों के लिए विविध प्रकार के उपयोग होते हैं। प्राणायाम के समय साधक को अपनी विशिष्ट संकल्प शक्ति का, श्रद्धा भावना का, मनोबल का प्रयोग करना पड़ता है। इसी आकर्षण से साँस में प्राणतत्त्व की अधिक मात्रा अंतरिक्ष से खिंचती और घुलती चली जाती है। प्राणायाम में श्वास क्रम की विशेष प्रक्रिया और साधक की संकल्प शक्ति का समावेश होने से वह सामान्य साँस लेना न रहकर, विशिष्ट ऊर्जा की उपलब्धि का विशेष आधार बन जाता है।

घर्षण के महत्त्व को हमें और भी अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। क्रिया सामान्य है, पर उसकी प्रतिक्रिया से ऊर्जा की उत्पत्ति असामान्य है। चलती रेल के पहियों की चिकनाई समाप्त हो जाती है अथवा अन्य किसी कारण उनमें घिसाव पड़ने लगता है, तो उतने भर से उत्पन्न होने वाली गर्मी पहिये के धुरे तक को गला देती है और दुर्घटना की स्थिति बन जाती है। आकाश में कभी-कभी प्रचंड रेखा बनाते हुए—'तारे टूटते' दिखते हैं। यह तारे नहीं उल्का पिंड होते हैं। अंतरिक्ष में छितराए हुए धातु पाषाण जैसे छोटे-छोटे टुकड़े कभी-कभी पृथ्वी के वायुमंडल में घुस पड़ते हैं

और हवा से टकराने पर जलकर खाक हो जाते हैं। इसी जलने का तेज प्रकाश देखकर 'तारा टूटने' का अनुमान लगाया जाता है। यह मात्र घर्षण क्रिया का चमत्कार है। 'रति-क्रिया' में चुंबकीय अवयवों का घर्षण विशिष्ट स्तर की ऊर्जा उत्पन्न करता है। उसी की अनुभूति सरस संवेदना के रूप में होती है और उसी से उत्तेजित होकर शुक्राणु डिंबाणु संयोग के लिए दौड़ पड़ते हैं। यह घर्षण ही प्राणियों की उत्पत्ति का कारण बनता है।

दही मथने में 'रई' को, रस्सी के दो छोर पकड़कर उलटा सीधा घुमाया जाता है। रई घूमती है। ऊर्जा उत्पन्न होती है और उसकी उत्तेजना से दही में घुला हुआ घी उभरकर बाहर आ जाता है। दाएँ-बाएँ नासिका स्वरों के चलने वाले विशेष प्रकार मेरुदंड के इड़ा-पिंगला विद्युत्-प्रवाहों को उत्तेजित करते हैं और उनकी सक्रियता दही मथने जैसी हलचल उत्पन्न करती है। फलतः ओजस् तत्त्व उभरकर ऊपर आता है। इसको विधिवत् उत्पन्न और धारण किया जा सके तो साधक को मनस्वी, तेजस्वी और ओजस्वी बनने का अवसर मिलता है। इस उपलब्धि के सहारे प्रखरता की अनेक चिनगारियाँ फूटती हैं। साहस, स्फूर्ति, पराक्रम, निष्ठा आदि अनेकों आंतरिक विशेषताओं के रूप में इनका प्रभाव उत्पन्न होता है। उनसे लाभान्वित होने पर व्यक्तित्व में अनेकों विभूतियाँ उभरती दिखाई देती हैं।

कई व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से समर्थ और मानसिक दृष्टि से सुयोग्य होते हैं, पर अंतःकरण में साहस न होने के कारण कोई महत्त्वपूर्ण कदम नहीं उठा पाते। शंका-आशंकाओं से असमंजस में पड़ी मनःस्थिति में न तो कोई साहसिक निर्णय कर सकना बन पड़ता है और न अवसर का लाभ उठा सकना ही संभव होता है। इसके विपरीत मनस्वी व्यक्ति स्वास्थ्य, शिक्षा, साधन, सहयोग, अवसर आदि की कठिनाइयाँ रहते हुए भी दुस्साहस भरे कदम उठते और आश्चर्यचकित करने वाली सफलताएँ प्राप्त करते हैं। ऐसे ही व्यक्ति अपने विशिष्ट कर्तृत्व और विशिष्ट व्यक्तित्व के

कारण कुछ ऐसा कर गुजरते हैं, जिनके कारण उन्हें ऐतिहासिक महामानवों की श्रेणी में गिना जाने लगता है। इस आंतरिक समर्थता को दूसरे शब्दों में प्राण कहा जाता है। प्राणवान् का अर्थ जीवित ही नहीं साहसी भी होता है। उस उपलब्धि को अन्य सांसारिक-संपदाओं की तुलना में कम नहीं अधिक ही माना जा सकता है।

प्राण विद्या के अंतर्गत किये जाने वाले प्राणायाम प्रयोगों में जिस अंतःऊर्जा की जागृति होती है, उनमें साहसिकता एवं सक्रियता प्रधान है। आलस्य और प्रमाद जैसी जीवन-संपदा को अपंग बना देने वाली दुःखदायी विडंबनाओं को निरस्त करने में इस साधना से बड़ी सहायता मिलती है, उत्साह जगता है और स्फूर्ति बढ़ती है। क्रिया के साथ मनोयोग जुड़ा रहने से सफलता के समस्त आधार बनते हैं। इसके लिए मन को प्रशिक्षित करना पड़ता है। यह भी सरकस के लिए हिंस्र जानवर सधाने की तरह कठिन कार्य है। यह अंतरंग आत्मबल के बिना और किसी प्रकार संभव नहीं हो सकता। व्यवहार-कौशल की शालीनता—व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय सिद्ध करने वाली सज्जनता एवं संपर्क क्षेत्र की बिखरी पड़ी अवांछनीयताओं से जूझने की वीरता यह सब कुछ आत्मबल से ही संभव हो सकता है। प्राण विद्या के आधार पर जो चेतनात्मक ऊर्जा उपार्जित की जाती है, उसे ऐसी ही साहसिकता एवं सक्रियता के सुखद समन्वय के रूप में काम करते हुए देखा जाता है।

अंडा तब फूटता है जब उसके भीतर के बच्चे की अंतःचेतना उस परिधि को तोड़कर बाहर निकलने की चेष्टा करती है। प्रसव पीड़ा और प्रजनन की घड़ी तब आती है, जब गर्भस्थ शिशु की चेष्टा उस बंधन को तोड़कर, उस बंधन से मुक्ति पाने की होती है। इन गर्भस्थ शिशुओं के संकल्प यदि गिरे मरे हों, तो वे भीतर ही सड़-गलकर नष्ट हो जाएँगे। प्रगति के लिए पराक्रम एवं साहस की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है। उसके बिना प्रतिकूलताओं के आए दिन होते रहने वाले आक्रमणों से आत्मरक्षा तक, कर सकना

संभव नहीं हो सकता। पराक्रम प्राण का गुण है। इसी को पौरुष एवं शौर्य भी कहते हैं। आत्मबल इसी आंतरिक ऊर्जा का नाम है। प्राणायाम के विविध प्रयोगों द्वारा विविध स्तर की प्राण ऊर्जा उत्पन्न करने के जो ऋषिप्रणीत प्रयोग बताए गए हैं, उनका साधक की स्थिति के अनुरूप यदि तालमेल बिठाया जा सके, तो अप्रत्यक्ष लाभ किसी बड़े प्रत्यक्ष उपार्जन की तुलना में कम नहीं अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

संध्या-वंदन हमारा धार्मिक नित्य कर्म है। उसमें प्राणायाम क्रिया भी सम्मिलित है। आत्म परिष्कार एवं आत्म-विकास के लिए आत्मबल अभिवर्धन की भी आवश्यकता है। आत्मिक प्रगति इसी आधार पर संभव होती है। आत्मबल बढ़ाने के लिए वैचारिक भावनापरक और क्रियात्मक प्रखरता उत्पन्न करना आवश्यक है। साथ ही इस प्रयोजन में असाधारण रूप से सहायता करने वाले प्राणायाम जैसे विशिष्ट क्रियायोगों की भी आवश्यकता रहती है। दुर्बलता निवारण के लिए आहार-विहार की सुव्यवस्था तो होनी ही चाहिए, पर साथ ही चिकित्सा उपचार के साधन जुटाने से भी उस कार्य में सहायता मिलती है। प्राणायाम ऐसा ही विशेष उपचार है, जिसके सहारे आत्मिक बलिष्ठता बढ़ने का पथ-प्रशस्त होता है। संध्या-वंदन के नित्य कर्म में उसका समावेश प्राणबल संवर्धन की आवश्यकता उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए ही किया गया है।

यह प्राणतत्त्व, जीवनतत्त्व जब न्यून पड़ता है, तो व्यक्ति हर दृष्टि से लड़खड़ाने लगता है और जब वह समुचित मात्रा में रहता है तो समस्त क्रिया-कलाप ठीक तरह चलते हैं। जब वह बढ़ता है तो उस अभिवृद्धि को बलिष्ठता, समर्थन, सतर्कता, तेजस्विता, मनस्विता, प्रतिभा आदि के रूप में देखा जा सकता है। ऐसे व्यक्ति ही महाप्राण कहलाते हैं। वे अपना प्राण असंख्यों में फूँकने और विश्व का मार्गदर्शन करने में समर्थ होते हैं। दानव शरीर में विद्यमान प्राणशक्ति से ही अंतःसंचालन-एफरेंट और नाड़ी-संस्थान नर्वस सिस्टम—अनुप्राणित होता है। मस्तिष्क की कल्पना, धारणा,

इच्छा, स्मृति, विवेचना, प्रज्ञा आदि समस्त शक्तियों का उत्पादन अभिवर्धन तथा संचालन होता है। शरीर और मन को दिशा एवं क्षमता प्रदान करने वाली अति उत्कृष्ट एवं अति सूक्ष्म सत्ता को 'वाइटल फोर्स' कहा जाता है। श्वास-प्रश्वास क्रिया तो उसका वाहन मात्र है; जिस पर सवार होकर वह महाशक्ति हमारे समस्त अवयवों में प्रवेश करती है और पोषण देती है। इसे भौतिक क्षेत्र में गर्मी, रोशनी, बिजली आदि के नाम से जाना जाता है और अंतःक्षेत्र में उसी को प्रखरता कहते हैं। प्राणतत्त्व यही है। जो इस संपदा का जितना अधिक अर्जन कर सका, वह उतना ही बड़ा शक्तिशाली सिद्ध होता है।

सर्व सुलभ प्राणायाम के विधि-विधान

प्राणायाम के दो उद्देश्य हैं—एक श्वास की गति का नियंत्रण दूसरा अखिल विश्व ब्रह्मांड में संव्याप्त प्राण चेतना को आकर्षित करके स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को उस अद्भुत शक्ति से ओत-प्रोत करना। मनोनिग्रह में भी प्राणायाम से आशाजनक सहायता मिलती है। चंचल और उच्छृंखल मन निर्दिष्ट केंद्र पर स्थिर होता दीखता है। इतना ही नहीं मनोविकारों के निराकरण का भी पथ प्रशस्त होता है। साधना जगत् में प्राणायाम की महत्ता एक स्वर से स्वीकार की गई है। शारीरिक और मानसिक आरोग्य की दृष्टि से उसे अतीव उपयोगी बताया गया है।

श्वास की गति में तीव्रता रहने से जीवन का शक्तिकोष जल्दी चुक जाता है और दीर्घजीवन संभव नहीं रहता। श्वास की चाल जितनी धीमी होगी, शरीर उतने ही अधिक दिनों जीवित रह सकेगा। कई प्राणियों की श्वास का तुलनात्मक अध्ययन करने से तथ्य बिलकुल स्पष्ट हो जाता है।

शारीरिक श्वास की चाल और जीविका-अवधि का लेखा-जोखा इस प्रकार है—खरगोश-श्वास ३८, आयु ८ वर्ष। कबूतर श्वास ३७, आयु ८ वर्ष। कुत्ता-श्वास २८, आयु १३ वर्ष।

बकरी-श्वास २४, आयु १४ वर्ष। घोड़ा-श्वास १८, आयु ५० वर्ष। मनुष्य-श्वास १२, आयु १०० वर्ष। हाथी-श्वास ११, आयु १०० वर्ष। सर्प-श्वास ७, आयु १२० वर्ष। कछुआ-श्वास ४, आयु १५० वर्ष।

भूतकाल में मनुष्यों की श्वास ११-१२ बार प्रति मिनट के हिसाब से चलती थी, अब वह बढ़कर १५-१६ पहुँच गई है। इसी अनुपात से उसकी आयु भी घट गई है।

श्वास की गति बढ़ने से तापमान बढ़ता है। बढ़ा हुआ तापमान आयु क्षय करता है। जो जानवर कुत्ते की तरह हाँफते हैं, जिनकी हाँफने की गति जितनी तीव्र होती है, वे उतनी ही जल्दी मरते हैं। स्मरण रहे हाँफना और तापमान की वृद्धि दोनों एक-दूसरे से संबंधित हैं। ज्वर आने पर आदमी भी हाँपने लगता है। इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि जिसकी साँस तेज चलेगी, उसके शरीर की गर्मी बढ़ जायेगी। यह गर्मी की बढ़ोत्तरी और साँस की चाल में तीव्रता दोनों ही जीवन का जल्दी अंत करने वाले हैं।

दीर्घायुष्य का रहस्य बताते हुए विज्ञानी जेक्टलूवे ने बताया है इन दिनों मनुष्यों का शारीरिक ताप ६८.६ रहता है। इसे आधा घटाया जा सके अर्थात् ४६ बना दिया जाए तो आदमी मजे से १००० वर्ष जी सकता है।

प्राणायाम में गहरी साँस लेने का अभ्यास किया जाता है। साधना समय उसके लिए विशेष प्रयास किया जाता है और यह ध्यान रखा जाता है कि सामान्य समय में भी उथले साँस लेने की आदत को बदला जाए और उसके स्थान पर गहरे साँस लेने का अभ्यास सदा के लिए डाला जाये। इससे स्वास्थ्य-संवर्धन और दीर्घजीवन की संभावनाएँ बढ़ती हैं।

साधारणतया हर मिनट में १८ बार हमारे फेफड़े फूलते सिकुड़ते हैं। २४ घंटे में एक प्रक्रिया की २५६२० बार पुनरावृत्ति होती है। प्रति श्वास में प्रायः ५०० सी० सी० वायु का प्रयोग होता है क्योंकि लोग उथला श्वास लेते हैं। सामान्यतया एक स्वस्थ शरीर की आवश्यकता पूर्ति के लिए हर साँस में १२०० सी० सी० वायु

का उपयोग होना चाहिए। लोग आवश्यकता को देखते हुए आधे से भी कम वायु प्राप्त करते हैं। यह आधे पेट भोजन या आधी प्यास पानी की तरह ही शरीर को दुर्बल ही बनाए रहेगा, स्वस्थ श्वासी सदा से गहरी साँस लेने की आवश्यकता बताते रहे हैं और कहते रहे हैं कि उथली साँस लेने की ढीलपोल से फेफड़े दुर्बल पड़ेंगे और उनमें क्षय, दमा, खाँसी, सीने का दर्द जैसे अनेक रोगों का खतरा बना रहेगा।

गहरी साँस लेने का लाभ यह है कि फेफड़ों को जल्दबाजी की भगदड़ से थोड़ी राहत मिलती है और वह उस अवकाश का उपयोग रक्त को अधिक शुद्ध करने में कर सकता है। इससे हृदय पर कम बोझा पड़ेगा और वह अधिक निरोग रह सकेगा। इंग्लैंड का विख्यात फुटबाल खिलाड़ी भिड़लोथियन अपने गर्वीले मन और फुर्तीलेपन का कारण गहरी साँस लेने का अभ्यास ही बताया करता है। वह प्रायः २००० सी० सी० वायु हर श्वास में लेता था, जबकि औसत व्यक्ति ५०० सी. सी. ही लेकर छुट्टी पाते हैं। वह स्वास्थ्य संरक्षण और दीर्घजीवन का सस्ता किंतु कारगार नुस्खा है।

डॉ० मेकडानल का कथन है—गहरी श्वाँस लेने का मतलब फेफड़ों को ही नहीं पेट के पाचन-यंत्रों को भी परिपुष्ट बनाना है। रक्त शुद्धि की दृष्टि से गहरा साँस बहुमूल्य दवादारू लेने से भी बढ़कर लाभदायक है। डॉ० नोल्स ने लिखा है—गहरी साँस लेने की आदत मनुष्य को अधिक कार्य कर सकने की क्षमता और स्फूर्ति प्रदान करती है। श्रमजीवियों की शक्ति साधारणतया अधिक ही खर्च होती है, इससे उन्हें जल्दी थकना चाहिए पर देखा इससे उलटा जाता है। वे अपेक्षाकृत अधिक बलिष्ठ रहते हैं, उसका प्रधान कारण कठोर श्रम करने के साथ-साथ फेफड़ों का अधिक काम करना और उस आधार पर रक्त शुद्धि का अधिक अवसर मिलना ही होता है। डॉ० मेटनो इससे भी आगे बढ़कर गहरी श्वसन क्रिया का प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ना स्वीकार करते हैं।

उन्होंने स्मरण शक्ति की वृद्धि से लेकर हर्षोल्लास मग्न रहने तक की विशेषता को इसी की लाभ परिधि में सम्मिलित किया है।

स्थूल शरीर में वायु-संचार के लिए फेफड़े प्रधान रूप से काम करते हैं। सूक्ष्म शरीर में यह कार्य भी नाभि केंद्र को ही करना पड़ता है। प्रत्यक्ष शरीर नासिका द्वारा वायु खींचता-छोड़ता है, सूक्ष्म शरीर को प्राण वायु का संचार करना होता है। प्राण वस्तुतः एक विद्युत् शक्ति है जो ऑक्सीजन की ही भाँति वायु में घुली रहती है। श्वास-प्रश्वास के साथ ही उसका आवागमन भी होता है। वैसे उसकी सत्ता वायु से सर्वथा भिन्न है। समुद्र के पानी में नमक घुला रहता है, यह ठीक है। वस्तुतः वे दोनों एक-दूसरे के भिन्न स्तर के ही हैं।

सूक्ष्म शरीर की नाड़ियों में प्रवाहित होने वाले शक्ति-प्रवाह को प्राण कह सकते हैं। जिस प्रकार रक्त और रक्त वाहिनी शिरा इन दोनों का परस्पर घनिष्ठ संबंध रहने पर भी उनकी सत्ता सर्वथा स्वतंत्र है। इसी प्रकार सूक्ष्म शरीर की नाड़ियों और उनमें प्रवाहित होने वाले प्राणों को एक-दूसरे से संबद्ध रहते हुए भी वह सत्ता की दृष्टि से पृथक् भी ठहराया जा सकता है।

प्रारंभ में यह कहा जा सकता है कि प्राण सत्ता पर नियंत्रण से ऐसी सिद्धियाँ उपलब्ध की जा सकती हैं, जहाँ तक पहुँचने में भौतिक विज्ञान को कई शताब्दियाँ लग सकती हैं। प्राणायाम, उसके द्वारा प्राण नियंत्रण एवं नियंत्रित प्राण का उपयोग विशुद्ध भौतिक विज्ञान है। इसे न तो किसी देव सत्ता का वरदान समझना चाहिए न परमात्मा का अनुग्रह। यह विशुद्ध रूप से अपने शरीर यंत्र का एक कारखाने की तरह का उपयोग भर है। हठयोग में ऐसे प्राणायाम बहुत प्रचलित हैं और आए दिन इस तरह के चमत्कार देखे जाते हैं। कुछ दिन पूर्व माउंट हिलेरी ने "समुद्र से आकाश" अभियान संपन्न किया। उस यात्रा के मध्य इलाहाबाद में एक रेशम का धागा बाँधकर, एक हठयोगी वयोवृद्ध साधक ने उनके ६० अश्व शक्ति के जेट इंजन को एक इंच भी खिसकने नहीं दिया था। यह

विशुद्ध प्राणायाम की शक्ति थी, किंतु उस तरह के प्राणायाम जितने शक्ति संवर्धक होते हैं, उतने ही भूल हो जाने पर अनिष्ट कारक भी हो सकते हैं। परमाणु शक्ति का दुरुपयोग स्वयं के लिए उतना ही घातक होता है, जितना शत्रु के लिए। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए भारतीय योग तत्त्ववेत्ताओं ने कुछ प्राणायाम ऐसे खोज निकाले, जो कोई भी, किसी भी शारीरिक, मानसिक स्थिति का व्यक्ति कभी भी कर सकता है। इस तरह के तीन प्राणायाम यहाँ दिये जा रहे हैं। प्रति वर्ष एक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। समय मिले तो यह अधिक अभ्यास बढ़ाकर ६-६ माह में भी संपन्न किए जा सकते हैं। चौथे वर्ष तीनों प्राणायामों का सम्मिलित अभ्यास करना चाहिए। इसके बाद के इच्छुकों के लिए पत्र लिखकर या भेंट-परामर्श के बाद आगे का प्राणायाम क्रम प्रारंभ करना चाहिए।

◯ १. प्रथम वर्ष का प्राणाकर्षण प्राणायाम

(१) "प्रातःकाल नित्य कर्म से निवृत्त होकर पूर्वाभिमुख पालथी मारकर बैठिए। दोनों हाथ घुटनों पर रखिए। मेरुदंड सीधा रखिए। नेत्र बंद कर लीजिए। ध्यान कीजिए कि अखिल आकाश में तेज और शक्ति से ओत-प्रोत प्राणतत्त्व व्याप्त हो रहा है। गरम भाप के, सूर्य के प्रकाश में चमकते हुए बादलों की शक्ल के प्राण का उफान हमारे चारों ओर उमड़ता चला आ रहा है और उस प्राण उफान के बीच हम निश्चिंत, शांत-चित्त एवं प्रसन्न मुद्रा में बैठे हुए हैं।"

(२) "नासिका के दोनों छिद्रों से धीरे-धीरे खींचना आरंभ कीजिए और भावना कीजिए कि प्राणतत्त्व के उफनते हुए बादलों को हम अपनी साँस द्वारा भीतर खींच रहे हैं। जिस प्रकार पक्षी अपने घोंसले में, साँप अपने बिल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार वह अपने चारों ओर बिखरा हुआ प्राण-प्रवाह हमारी नासिका द्वारा साँस के साथ शरीर के भीतर प्रवेश करता है और मस्तिष्क, छाती, हृदय, पेट, आँतों से लेकर समस्त अंगों में प्रवेश कर जाता है।"

(३) जब साँस पूरी खिंच जाए तो उसे भीतर रोकिए और भावना कीजिए कि—"जो प्राणतत्त्व खींचा गया है, उसे हमारे भीतरी अंग-प्रत्यंग सोख रहे हैं। जिस प्रकार मिट्टी पर पानी डाला जाए तो वह उसे सोख जाती है, उसी प्रकार अपने अंग सूखी मिट्टी के समान हैं और जलरूपी इस खींचे हुए प्राण को सोखकर अपने अंदर सदा के लिए धारण कर रहे हैं। साथ ही प्राणतत्त्व में सम्मिश्रित चैतन्य, तेज, बल, उत्साह, साहस, धैर्य, पराक्रम सरीखे अनेक तत्त्व हमारे अंग-प्रत्यंग में स्थिर हो रहे हैं।"

(४) "जितनी देर साँस आसानी से रोकी जा सके, उतनी देर रोकने के बाद धीरे-धीरे साँस बाहर निकालिए, साथ ही भावना कीजिए कि प्राणवायु का सारतत्त्व हमारे अंग-प्रत्यंगों के द्वारा खींच लिए जाने के बाद अब वैसा ही निकम्मा वायु बाहर निकाला जा रहा है जैसा कि मक्खन निकाल लेने के बाद निस्सार दूर हटा दिया जाता है! शरीर और मन में जो विकार थे, वे सब इस निकलती हुई साँस के साथ घुल गये हैं और काले धुएँ के समान अनेक दूषणों को लेकर वह बाहर निकल रहे हैं।"

(५) "पूरी साँस बाहर निकल जाने के बाद कुछ देर बाहर साँस रोकिए अर्थात् बिना साँस के रहिए और भावना कीजिए कि अंदर के जो दोष बाहर निकाले गये थे, उनको वापिस न लौटने देने की दृष्टि से दरवाजा बंद कर दिया गया है और वे बहिष्कृत होकर हमसे बहुत दूर उड़े जा रहे हैं।"

"इस प्रकार पाँच अंगों में विभाजित इस प्राणाकर्षण प्राणायाम को नित्य ही जप से पूर्व करना चाहिए। आरंभ ५ प्राणायाम से किया जाए अर्थात् उपरोक्त क्रिया पाँच बार दुहराई जाए। इसके बाद हर महीने एक प्राणायाम बढ़ाया जा सकता है। यह प्रक्रिया धीरे-धीरे बढ़ाते हुए एक वर्ष में आधा घंटा तक पहुँचा देनी चाहिए।"

● २. लोम-विलोम सूर्य-वेधन प्राणायाम

प्रथम वर्ष के लिए उपरोक्त प्राणाकर्षण प्राणायाम है और द्वितीय वर्ष में लोम-विलोम सूर्य-भेदन प्राणायाम का अभ्यास निम्न प्रकार है—

(१) किसी शांत एकांत स्थान में प्रातःकाल स्थिर चित्त होकर बैठिए। पूर्व की ओर मुख, पालथी मारकर, सरल पद्मासन से बैठना, मेरुदंड सीधा, नेत्र अधखुले, घुटनों पर दोनों हाथ। यह प्राण मुद्रा कहलाती है, इसी पर बैठना चाहिए।

(२) बाएँ हाथ को मोड़कर तिरछा कीजिए। उसकी हथेली पर दाहिने हाथ की कोहनी रखिए। दाहिना हाथ ऊपर उठाइए। अँगूठा दाहिने नथुने पर और मध्यमा तथा अनामिका उँगलियाँ बाएँ नथुने पर रखिए।

(३) बाएँ नासिका के छिद्र को मध्यमा (बीच की) और अनामिका (तीसरे नंबर की) उँगली से बंद कर लीजिए। साँस फेफड़े तक ही सीमित न रहे, उसे नाभि तक ले जाना चाहिए और धीरे-धीरे इतनी वायु पेट में ले जानी चाहिए, जिससे वह पूरी तरह फूल जाए।

(४) ध्यान कीजिए कि सूर्य की किरणों जैसा प्रकाश वायु में सम्मिश्रित होकर दाहिने नासिका छिद्र में अवस्थित पिंगला नाड़ी द्वारा अपने शरीर में प्रवेश कर रहा है और उसकी ऊष्मा अपने भीतरी अंग-प्रत्यंगों को तेजस्वी बना रही है।

(५) साँस को कुछ देर भीतर रोकिए। दोनों नासिका छिद्र बंद कर लीजिए और ध्यान कीजिए कि नाभि चक्र के प्राण वायु द्वारा एकत्रित हुआ तेज नाभि चक्र में एकत्रित हो रहा है। नाभि-स्थल से चिरकाल से प्रसुप्त पड़ा हुआ सूर्य चक्र इस आगत प्रकाशवान् प्राण वायु से प्रभावित होकर, चमकीला हो रहा है और उसकी दमक बढ़ती जा रही है।

(६) दाहिने नासिका छिद्र को अँगूठे से बंद कर लीजिए। बायाँ खोल दीजिए। साँस को धीरे-धीरे बाएँ नथूने से बाहर निकालिए और ध्यान कीजिए कि चक्र को सुषुप्त और धुँधला बनाए रहने वाले कल्मष इस छोड़ी हुई साँस के साथ बाहर निकल रहे हैं। इन कल्मषों के मिल जाने के कारण साँस खींचते समय जो शुभ्र वर्ण तेजस्वी प्रकाश भीतर गया था, वह अब मलीन हो गया और पीत वर्ण होकर साँस के साथ बाएँ नथुने की इड़ा नाड़ी द्वारा बाहर निकल रहा है।

(७) दोनों नथुने फिर बंद कर लीजिए। फेफड़ों को बिना साँस के खाली रखिए। ध्यान कीजिए कि बाहरी प्राण बाहर रोक दिया गया है। उसका दबाव भीतरी प्राण पर बिलकुल भी न रहने से वह हल्का हो गया है। नाभि चक्र में जितना प्राण सूर्य पिंड की तरह एकत्रित था, वह तेज-पुंज की तरह ऊपर की ओर अग्नि शिखाओं की तरह ऊपर उठ रहा है। उसकी लपटें पेट के ऊर्ध्व भाग, फुफ्फुस को बेधती हुई कंठ तक पहुँच रही हैं। भीतरी अवयवों में सुषुम्ना नाड़ी में से प्रस्फुटित हुआ, यह प्राण-तेज अंतःप्रदेश को प्रकाशमान बना रहा है।

(८) अँगूठे से दाहिना छिद्र बंद कीजिए और बाँए नथुने से साँस खींचते हुए ध्यान कीजिए कि इड़ा नाड़ी द्वारा सूर्य प्रकाश जैसा प्राणतत्त्व साँस से मिलकर शरीर में भीतर प्रवेश कर रहा है और वह तेज सुषुम्ना विनिर्मित नाभि-स्थल के सूर्य चक्र में प्रवेश करके, वहाँ अपना भंडार जमा कर रहा है। इस तेज संचय से सूर्यचक्र क्रमशः अधिक तेजस्वी बनता चला जा रहा है।

(६) दोनों नासिका छिद्रों को बंद कर लीजिए। साँस को भीतर रोकिए। ध्यान कीजिए कि साँस के साथ एकत्रित किया हुआ तेजस्वी प्राण नाभि स्थित सूर्यचक्र में अपनी तेजस्विता को चिरस्थायी बना रहा है। तेजस्विता निरंतर बढ़ रही है और वह अपनी लपटें पुनः ऊपर की ओर अग्नि शिखा की तरह ऊर्ध्वगामी बना रही है। इस तेज से सुषुम्ना नाड़ी निरंतर परिपुष्ट हो रही है।

(१०) बायाँ नथुना बंद कीजिए और दाहिने से साँस धीरे-धीरे बाहर निकालिए। ध्यान कीजिए कि सूर्य चक्र का कल्मष धुएँ की तरह तेजस्वी साँस से मिलकर, उसे धुँधला पीला बना रहा है और पीली प्राण-वायु पिंगला नाड़ी द्वारा बाहर निकल रही है। भीतरी कषाय-कल्मष बाहर निकलने से अंतःकरण बहुत हल्का हो रहा है।

(११) दोनों नासिका छिद्रों को पुनः बंद कीजिए और उपरोक्त नं ६ की तरह फेफड़ों को साँस से बिल्कुल खाली रखिए। नाभि चक्र से कंठ तक सुषुम्ना का प्रकाश पुंज ऊपर उठता देखिए। भीतरी अवयवों में दिव्य ज्योति जगमगाती अनुभव कीजिए।

यह एक लोम-विलोम सूर्य-वेधन प्राणायाम हुआ। साँस के साथ खींचा हुआ प्राण नाभि में स्थित सूर्य चक्र को जाग्रत् करता है। उसके आलस्य और अंधकार को वेधता है और वह सूर्यचक्र अपनी परिधि को वेधन करता हुआ सुषुम्ना मार्ग से उदर, छाती और कंठ तक अपना तेज फेंकता है। इन कारणों से इसे सूर्य वेधन कहते हैं। लोम कहते हैं सीधे को, विलोम कहते हैं उल्टे को। एक बार सीधा, एक बार उल्टा। फिर उल्टा, फिर सीधा। फिर उल्टा, बाएँ से खींचना, दाएँ से निकालना। दाहिने से खींचना बाएँ से निकालना। यह उल्टा-सीधा चक्र रहने से इसे लोम-विलोम कहते हैं। प्राणायाम की प्रकृति के अनुसार इसे लोम-विलोम सूर्य-वेधन प्राणायाम कहा जाता है।

३. तीसरे वर्ष के लिए 'नाड़ी-शोधन प्राणायाम'

(१) प्रातःकाल पूर्व को मुख करके, कमर सीधी रखकर सुखासन से पालथी मारकर बैठिये। नेत्रों को अधखुले रखिए।

(२) दाहिना नासिका छिद्र बंद कीजिए। बाएँ छिद्र से साँस खींचिए और उसे नाभि चक्र तक खींचते जाइए।

(३) ध्यान कीजिए कि नाभि स्थान में पूर्णिमा के पूर्ण चंद्रमा के समान पीतवर्ण शीतल प्रकाश विद्यमान है। खींचा हुआ साँस उसे स्पर्श कर रहा है।

(४) जितने समय में साँस खींचा गया था, उतने ही समय भीतर रोकिए और ध्यान करते रहिए कि नाभिचक्र में स्थित पूर्ण चंद्र के प्रकाश को खींचा हुआ श्वास स्पर्श करके स्वयं शीतल और प्रकाशवान् बन रहा है।

(५) जिस नथुने से साँस खींचा था, उसी बाएँ छिद्र से ही साँस बाहर निकालिए और ध्यान कीजिए कि नाभिचक्र के चंद्रमा को छूकर, वापिस लौटने वाली प्रकाशवान एवं शीतल वायु इड़ा नाड़ी की छिद्र नलिका को शीतल एवं प्रकाशवान् बनाती हुई वापिस लौट रही है।

(६) कुछ देर साँस बाहर रोकिए और फिर उपरोक्त क्रिया आरंभ कीजिए। बाएँ नथुने से ही साँस खींचिए और उसी से निकालिए। दाहिने छिद्र को अँगूठे से बंद रखिए। इसी को तीन बार कीजिए।

(७) जिस प्रकार बाएँ नथुने से पूरक, कुंभक, रेचक बाह्य कुंभक किया था, उसी प्रकार दाहिने नथुने से भी कीजिए। नाभिचक्र में चंद्रमा के स्थान पर सूर्य का ध्यान कीजिए और साँस छोड़ते समय भावना कीजिए कि नाभि स्थित सूर्य को छूकर वापिस लौटने वाली वायु श्वास नली के भीतर उष्णता और प्रकाश उत्पन्न करती हुई लौट रही है।

(८) बाएँ नासिका स्वर को बंद रखकर, दाहिने छिद्र से भी इस क्रिया को तीन बार कीजिए।

(९) अब नासिका के दोनों छिद्र खोल दीजिए। दोनों से साँस खींचिए और भीतर रोकिए और मुँह खोलकर साँस बाहर निकाल दीजिए। यह विधि एक ही बार करनी चाहिए।

तीन बार बाएँ नासिका छिद्र से साँस खींचते और छोड़ते हुए नाभि चक्र में चंद्रमा का शीतल ध्यान तीन बार दाहिने नासिका छिद्र से साँस खींचते-छोड़ते हुए सूर्य का उष्ण प्रकाश वाला ध्यान, एक बार दोनों छिद्रों से साँस खींचते हुए मुख से साँस निकालने की क्रिया यह सात विधान मिलकर एक नाड़ी-शोधन प्राणायाम बनता है।

● ४. चतुर्थ वर्ष सम्मिलित अभ्यास

तीनों प्राणायाम सफलतापूर्वक संपन्न कर लेने के बाद चौथे वर्ष तीनों प्राणायामों का सम्मिलित अभ्यास किया जाता है। प्रारंभ में तीन प्राणाकर्षण, दो लोम-विलोम सूर्य-वेधन और एक नाड़ी-शोधन किया जाए। पीछे इनकी संख्या इसी अनुपात से बढ़ाई जा सकती है।

इनका अभ्यास कर लेने तक साधक को विलक्षण अनुभूतियाँ अवश्य होंगी। वह किसी विश्वासपात्र को बताई भी जा सकती हैं, मार्गदर्शन भी लिया जा सकता है, पर इन बातों को नितांत सामान्य चर्चा का विषय नहीं बनाना चाहिए। यदि यह प्राणायाम पक चुके हैं, तो अब तक की अनुभूतियों के आधार पर अंगों के प्राणायाम जानकार मार्गदर्शक से ज्ञात किये जा सकते हैं।

प्राणायाम-साधना के कुछ आवश्यक ज्ञातव्य

(१) प्राणायाम खाली पेट में करना चाहिए।

(२) स्थान ऐसा हो जहाँ शुद्ध व ताजी वायु मिल सके। दुर्गंधित स्थानों में प्राणायाम नहीं करना चाहिए।

(३) प्रारंभ एक दो प्राणायाम से करें, पीछे समय और संख्या क्रमशः बढ़ाएँ।

(४) प्राणायाम कर लेने के बाद १ घंटे तक भारी वजन की वस्तुएँ न उठाएँ।

(५) प्राण शक्ति विशुद्ध रूप से विद्युत् क्षमता संपन्न होती है अतएव विद्युत् नियमों के समान ही जब तक नव-उपार्जित प्राण पूरी तरह पच न जाए, तब तक सुचालक धातुओं का स्पर्श न करें। स्वर्ण, रजत आभूषण तथा इस श्रेणी के उच्च आभूषण स्पर्श में कोई दोष नहीं है।

(६) प्राणायाम साधना के दिनों में जहाँ तक संभव हो सहवास से बचा जाए, क्योंकि शरीर के अन्य अवयवों की तरह इस अवधि में काम-अवयवों का थोड़े में उत्तेजित हो उठना नितांत संभव है। इस अवधि में बाल न बनाना या स्वयं बनाना, नंगे पैरों की अपेक्षा कपड़े के जूते या खड़ाऊँ पहने जाएँ तो अच्छा है।

(७) तख्त पर सोएँ, चारपाई पर सोएँ तो शरीर को अधिक सुख देने वाले नर्म गद्दे न बिछाएँ।

यह थोड़ी सावधानियाँ हैं जो प्राण शक्ति, प्राण शरीर के द्रुत विकास में सहायक होती हैं। प्राणायाम एक प्रत्यक्ष विज्ञान है, जिसका लाभ कोई भी व्यक्ति चाहे वह श्रद्धालु हो या अश्रद्धालु सहर्ष ले सकता है। चमत्कारिक लाभ मिलें या न मिलें, दीर्घजीवन, आरोग्य निरालस्य, स्फूर्ति, साहस, नेत्रों में चमक, गहरी नींद, शरीर में हलकेपन जैसे अनेक भौतिक लाभ तो उससे सुनिश्चित ही हैं।

❏ ❏

अंतरंग में उतरें आत्म बल प्राप्त करें

※

मनुष्य यों देखने में एक दुर्बल-सा प्राणी मालूम पड़ता है, पर वह प्राणी विद्युत् की दृष्टि से सृष्टा की अद्‌भुत एवं अनुपम संरचना हैं। विशेषतया मस्तिष्क इतनी विलक्षणताओं का केंद्र है, जिसके आगे अद्यावधि आविष्कृत हुए समस्त मानवकृत यंत्रों का एकत्रीकरण भी हलका पड़ेगा। उसमें अगणित चुंबकीय केंद्र हैं, जो विविध-विधि रिसीवरों, ट्रान्सफार्मरों का कार्य संपादित करते हैं। ब्रह्मांड में असंख्य प्रकार के एक से एक रहस्यमय प्रवाह-स्पंदन गतिशील रहते हैं, इनमें से मनुष्य को मात्र कुछेक की ही लँगड़ी-लूली जानकारी है। यह जानकारी का क्षेत्र जितना-जितना विस्तृत होता जाता है, उससे असीम शक्ति की, असंख्य धाराओं की हलकी-फुलकी झाँकी मिलती है। कदाचित् अबकी अपेक्षा मनुष्य के हाथ दूना-चौगुना भी और लग गया तो स्रष्टा की प्रतिद्वंद्विता करने लगेगा। इतना होते हुए भी जो कुछ जानना और पाना शेष रह जायेगा, जिसकी कल्पना कर सकना भी कठिन है। ब्रह्मांड की भौतिक और चेतनात्मक संभावनाएँ इतनी अधिक हैं कि उन्हें अचिंत्य, असीम, अनंत, अनिवर्चनीय आदि कहकर ही संतोष किया जा सकता है।

सर्वविदित है कि पृथ्वी सूर्य, चंद्र एवं सौरमंडल के अन्य ग्रहों से बहुत कुछ अनुदान प्राप्त करती है और उस उधार की पूँजी से अपनी दुकान चलाती है। सौरमंडल से बाहर के ग्रह-नक्षत्र भी उसे बहुत कुछ देते हैं। वह हलका होने के कारण विनिर्मित यंत्रों की पकड़ में नहीं आता तो भी वह स्वल्प या नगण्य नहीं है। कोई वस्तु हलकी होने के कारण उपहासास्पद नहीं बन जाती, वरन् सच तो यह है कि सूक्ष्मता के अनुपात में शक्ति की गरिमा बढ़ती जाती है। होम्योपैथी विज्ञान ने इस संदर्भ में अच्छे गहरे और प्रामाणिक प्रयोग

प्रस्तुत किए हैं। ब्रह्मांड में बिखरे पड़े कोटि-कोटि ग्रह-नक्षत्र अपनी-अपनी उपलब्धियाँ मिल-बाँटकर खाते हैं। तभी तो वे सब एक सूत्र में पिरोये हुए हैं। यदि उनमें से प्रत्येक ने अपनी उपलब्धियों को अपने ही सीमित क्षेत्र में समेट-सिकोड़कर रखा होता तो ब्रह्मांड का सारा सीराजी बिखर जाता और यहाँ केवल धूलि के बादल इधर-उधर मारे-मारे फिरते दिखाई पड़ते । पृथ्वी को अगणित शक्ति केंद्रों के छोटे-बड़े उपहार मिलते रहते हैं और वह उन खिलौनों से खेलती हुई अपना विनोद-प्रमोद स्थिर रखे रहती है।

जिस प्रकार पृथ्वी अन्य ग्रहों से लेती है, उसी प्रकार वह अपना उपार्जन ब्रह्मांड परिवार को बाँटती भी है। 'दो और लो' का विनिमय क्रम ही इस सृष्टि की धुरी बनकर काम कर रहा है। पृथ्वी और ब्रह्मांड के बीच जो आदान-प्रदान क्रम चल रहा है, वह चेतना के घटाकाश—मनुष्य और महाआकाश—विश्वमानव के बीच भी चल रहा है। पिंड शब्द का प्रयोग ग्रह-नक्षत्रों की तरह मानव शरीर के लिए भी होता है। मनुष्य एक पिंड है, उसका ब्रह्मांडव्यापी असंख्य चेतना पिंडों के साथ वैसा ही संबंध है, जैसा पृथ्वी का सौरमंडल से, देवयानी नीहारिका से अथवा ब्रह्मांड केंद्र महाध्रुव अनंत शेष से। मनुष्य की चेतना अपनी उपलब्धियाँ विश्व चेतना को प्रदान करती हैं और वहाँ से अपने लिए उपयोगी अनुदान प्राप्त करती है।

यों चेतना शरीर के कण-कण में बिखरी पड़ी है, पर उसका उद्गम निर्झर मस्तिष्क से ही फूटता है। ध्रुवीय चुंबक शक्ति की तरह मस्तिष्क में भी आकर्षक और दिकर्षक केंद्र है। वे ब्रह्मांड से बहुत कुछ ग्रहण करते और देते हैं। इन्हीं क्रिया केंद्रों की रिसीवरों एवं ट्रान्सफार्मरों के रूप में व्याख्या की जाती है।

मनुष्य की स्वास्थ्य, चरित्र, संस्कार, शिक्षा आदि विशेषताएँ मिलकर समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं और उसी के आधार पर उसकी प्रतिभा निखरती है। प्रतिभा न केवल सामने आने वाले

कामों की सफलता के लिए वरन् दूसरों पर प्रभाव डालने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण होती है। व्यक्तिगत जीवन में यह प्रतिभा धैर्य, साहस, संतुलन, विवेक, दूरदर्शिता एवं शालीनता के रूप में दृष्टिगोचर होती है। सामाजिक जीवन में वह संबंधित लोगों को प्रभावित करती है। उन पर छाप डालती है एवं सहयोग, सद्भाव, सम्मान प्रदान करने के लिए आकर्षित करती है। प्रतिभा प्रयत्नपूर्वक बढ़ाई जा सकती है। इन प्रयत्नों में लौकिक गतिविधियाँ भी शामिल हैं और आध्यात्मिक साधनाएँ भी। साधनारत मनुष्य अपनी संकल्प शक्ति और उपासनात्मक तपश्चर्याओं द्वारा अतींद्रिय शक्ति का उद्भव करते हैं। अंतराल में प्रसुप्त पड़ी क्षमताओं को जगाया जाना और इस विशाल ब्रह्मांड में बिखरे हुए शक्तिशाली चेतन तत्त्वों को खींचकर अपने में धारण करना; यह दोनों ही प्रयत्न अध्यात्म साधनाओं द्वारा किए जाते हैं। जिनमें यह उभयपक्षीय विशेषताएँ बढ़ती हैं, उन्हें कई दृष्टियों से चमत्कारी विशेषताओं से सुसंपन्न पाया जाता है।

जिस प्रकार हृदय-स्पंदन की गतिविधियों की जानकारी इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम यंत्र से होती है। उसी प्रकार मस्तिष्क विद्युत् के आधार पर चलने वाली विचार-तरंगों का अंकन इलेक्ट्रो एंकैफलोग्राफ यंत्र से होता है। मनः क्षेत्र से चिंतन स्तर के अनुरूप कितनी ही प्रकार की अल्फा, बीटा, डेल्टा, आदि किरणें निकलती हैं, जो उनके आयाम और दैर्ध्य चिंतन और स्थिति का विवरण प्रस्तुत करती हैं।

किन्हीं-किन्हीं व्यक्तियों की शारीरिक बनावट सामान्य होती है, देखने में उनका व्यक्तित्व सीधा सरल-सा लगता है; पर उनमें विशिष्ट विद्युत् शक्ति इतनी भरी होती है कि जो भी काम हाथ में लेते हैं उसे संभालते चले जाते हैं, जिसके भी संपर्क में आते हैं उन्हें प्रभावित किये बिना नहीं रहते।

किस व्यक्ति में कितनी अतिमानवी विद्युत् शक्ति है, उसका परिचय उसके चेहरे के इर्द-गिर्द और शरीर के चारों ओर बिखरे

हुए तेजोवलय को देखकर जाना जा सकता है। यह तेजोवलय खुली आँखों से दिखाई नहीं पड़ता, पर उसे सूक्ष्मदर्शी दृष्टि से अनुभव किया जा सकता है। अब ऐसे यंत्र भी बन गए हैं, जो मानव शरीर में पाई जाने वाली विद्युत् शक्ति और उसके एक सीमा तक निकलने वाले विकिरण का विवरण प्रस्तुत कर सकते हैं। देवी- देवताओं के चेहरे पर एक प्रभामंडल चित्रित किया जाता है। यह विशिष्ट मानवी विद्युत् शक्ति है। इसका संबंध भौतिक प्रतिभा और आध्यात्मिक शक्ति धाराओं के साथ जुड़ा रहता है।

डॉ० चार्ल्स फारे ने अपने ग्रंथ 'एनल्स डिस साइंसेज साइकिक्स' नामक ग्रंथ में अपने कुछ रोगियों के शिरों भाग पर छाए प्रभा मंडल का विवरण दिया है और बताया है कि रोगों के कारण इस तेजोवलय में क्यों और क्या अंतर उत्पन्न होते रहते हैं ?

इटली में पिरानो अस्पताल में अन्नामोनारो नामक महिला के शरीर में डॉक्टरों ने खुली आँखों से झिलमिलाता नील वर्ण प्रभामंडल देखा था। जब वह दीप्ति अधिक तीव्र होती थी, तब वह महिला पसीने से लथपथ हो जाती थी। साँसें तेजी से चलतीं और दिल की धड़कन बढ़ जाती थी। उस महिला की इस विद्युत् स्थिति को देखने के लिए विश्व भर के जीव विज्ञानी, भौतिकशास्त्री और पत्रकार पहुँचे थे।

'फिजीकल फेनामेना ऑफ मिस्टिसिज्म' ग्रंथ के लेखक हरबर्ट थर्स्टन ने अपनी खोजों में ऐसे ईसाई संतों का विवरण छापा है, जिनके चेहरे पर लंबे उपवास के उपरांत, दीप्तिमान, तेजोवलय देखे गए। उन्होंने अन्नामोनारो का विवरण विशेष रूप से लिखा, जिनके शरीर में उपवास के उपरांत सल्फाइडों की असाधारण वृद्धि हो गई थी। अल्ट्रावायलेट तरंगें अधिक बहने लगीं थीं, जिनका आभास दीप्तिमान चक्र के रूप में होता था। विद्वान् थर्स्टन ने भी अपने विवरणों में ऐसे ही कई दीप्तिमान संतों की चर्चा की है और उनकी विद्युतीय स्थिति में असामान्यता होने का उल्लेख किया है।

अमेरिकी वैज्ञानिक मनुष्य शरीर के चारों ओर बिखरे रहने वाले विशेषतया चेहरे के इर्द-गिर्द अधिक प्रखर पाए जाने वाले तेजोवलय के संबंध में अपनी शोधें बहुत पहले प्रकाशित कर चुके हैं। अब रूसी वैज्ञानिकों ने भी उस प्रभामंडल के छाया-चित्र उतारने में सफलता प्राप्त कर ली है। 'सोवियत यूनियन' पत्र के १८५वें अंक में इन खोजों का विस्तृत विवरण छपा है। यह प्रभामंडल सदा एक रस नहीं रहता, उसमें उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, जिनसे विदित होता है कि व्यक्ति के भीतर क्या-क्या विद्युतीय हलचलें हो रही हैं ? यदि इस प्रभामंडल के बारे में अधिक जाना जा सके, तो न केवल शारीरिक स्थिति के बारे में वरन् मस्तिष्कीय हलचलों के बारे में भी किसी व्यक्ति का पूरा गहरा और विस्तृत परिचय प्राप्त हो सकता है।

शरीर-संचार की समस्त गतिविधियाँ तथा मस्तिष्कीय उड़ान रक्त, मांस जैसे साधनों से नहीं उस विद्युत्-प्रवाह के द्वारा संभव होती हैं, जो जीवनतत्त्व बनकर रोम-रोम में संव्याप्त है। इसी को मानवीय विद्युत् कहते हैं। ओजस्वी, मनस्वी और तेजस्वी इसी विशेषता से सुसंपन्न लोगों को कहते हैं। प्रतिभाशाली-प्रगतिशील लोगों और शूरवीर-साहसी लोगों में इसी क्षमता की बहुलता पाई जाती है।

यह जैव विद्युत् उस भौतिक बिजली से भिन्न है, जो विद्युत् यंत्रों में प्रयुक्त होती है। बैटरी, मैग्नेट, जनरेटर आदि का स्पर्श करने पर बिजली का झटका लगता है। उसके संपर्क से बल्ब, पंखे, रेडियो, हीटर आदि काम करने लगते हैं। जीव विद्युत् का स्तर भिन्न है इसलिए वह यह कार्य तो नहीं करती, पर अन्य प्रकार के प्राणी की अति महत्त्वपूर्ण आवश्यकता पूरी करने वाले कार्य संपन्न करती देखी जा सकती है।

कोशिकाओं की आंतरिक संरचना में एक महत्त्वपूर्ण आधार है माइटोकोंड्रिया। इसे दूसरे शब्दों में कोशिका का पावर हाउस-विद्युत् भंडार कह सकते हैं। भोजन, रक्त, मांस, अस्थि आदि से आगे

बढ़ते-बढ़ते अंततः इसी संस्थान में जाकर ऊर्जा का रूप होता है। यह ऊर्जा ही कोशिका को सक्रिय रखती है और उनकी सामूहिक सक्रियता जीव संचालक के रूप में दृष्टिगोचर होती है। इस ऊर्जा को लघुत्तम प्राणांश कह सकते हैं। काय-कलेवर में इसका एकत्रीकरण महाप्राण कहलाता है और उसी को ब्रह्मांडव्यापी चेतना-विश्व प्राण या विराट् प्राण के नाम से जाना जाता है। प्राणांश की लघुत्तम ऊर्जा इकाई कोशिका के अंतर्गत ठीक उसी रूप में विद्यमान् है, जिसमें कि विराट् प्राण गतिशील है। बिंदु-सिंधु जैसा अंतर इन दोनों के बीच रहते हुए भी वस्तुतः वे दोनों अन्योन्याश्रित हैं। कोशिका के अंतर्गत प्राणांश के घटक परस्पर संयुक्त न हों तो महाप्राण का अस्तित्व न बने। इसी प्रकार यदि विराट् प्राण की सत्ता न हो तो भोजन, पाचन आदि का आधार न बने और वह लघु प्राण जैसी विद्युत्धारा का संचार भी संभव न हो।

योग-साधना का उद्देश्य इस चेतना विद्युत् शक्ति का अभिवर्धन करना भी है। इसे मनोबल, प्राणबल और आत्मबल भी कहते हैं। संकल्प शक्ति और इच्छा शक्ति के रूप में इसी के चमत्कार देखे जाते हैं।

अध्यात्म शास्त्र में प्राण-विद्या का एक स्वतंत्र प्रकरण एवं विधान है। इसके आधार पर साधनारत होकर मनुष्य इस प्राण विद्युत् की इतनी अधिक मात्रा अपने में संग्रह कर सकता है कि उस आधार पर अपना ही नहीं अन्य अनेकों का भी उपकार, उद्धार कर सके।

योग-साधना इस मानवी विद्युत् भंडार को असाधारण रूप से उत्तेजित करती और उभारती है। यदि सही ढंग से साधना की जाए तो मनुष्य प्राणवान और ओजस्वी बनता है। उपार्जित प्राण विद्युत् की ऊर्जा के सहारे स्वयं कितनी ही अद्‌भुत सफलताएँ प्राप्त करता है और दूसरों को सहारा देकर ऊँचा उठाता है।

प्राण विद्युत् के संबंध में शरीर विज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पेशियों में काम करने वाली स्थिति तक ऊर्जा—पोटैंशियल

का तथा उसके साथ जुड़े रहने वाले आवेश—इंटेन्सिटी का जीवन संचार में बहुत बड़ा हाथ है। इन विद्युत् धाराओं का वर्गीकरण तथा नामकरण—सीफेली ट्राइजमिल न्यूनैलाजिया की व्याख्या चर्चा के साथ प्रस्तुत किया जाता है। ताप विद्युत् संयोजन—थर्मोलैरिक कपलिंग के शोधकर्त्ता अब इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव शरीर का सारा क्रिया-कलाप इसी विद्युतीय संचार के माध्यम से गतिशील रहता है।

मनुष्य शरीर में बिजली काम करती है, यह तथ्य सर्वविदित है। इलैक्ट्रो कार्डियोग्राफी तथा इलैक्ट्रो इनसिफैलोग्राफी द्वारा इस तथ्य को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। हमारी रक्त नलिकाओं में लौहयुक्त हीमोग्लोबिन भरा पड़ा है। लौहचूर्ण और चुंबक जिस प्रकार परस्पर चिपके रहते हैं, उसी प्रकार हमारी जीवन सत्ता भी जीव कोशों को परस्पर संबद्ध किये रहती है। उनकी सम्मिश्रित चेतना से वे समस्त क्रिया-कलाप चलते हैं, जिन्हें हम जीवन-संचार व्यवस्था कहते हैं।

शरीर में जो चमक, स्फूर्ति, ताजगी, उमंग, साहस, उत्साह, निष्ठा, तत्परता जैसी विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं—वे प्राण ऊर्जा की ही प्रतिक्रियाएँ हैं। मनस्वी, ओजस्वी, तेजस्वी, तपस्वी आदि शब्द इसी क्षमता का बाहुल्य व्यक्त करते हैं। ऐतिहासिक महामानवों में यही विशेषता प्रधान रूप से रही है।

ऊर्जा के सहारे ही यंत्रों का संचालन होता है। मनुष्य शरीर भी एक यंत्र है। उसके संचालन में जिस विद्युत् की आवश्यकता पड़ती है उसे प्राण कहते हैं। प्राण एक अग्नि है, जिसे ज्वलंत रखने के लिए बाहर की आवश्यकता पड़ती है। आधुनिक वैज्ञानिक ने इसे 'जीव विद्युत्' नाम दिया है।

निद्रा मात्र थकान मिटाने की, विश्राम प्रक्रिया मात्र नहीं है। वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार निद्रा में मस्तिष्क का सचेतन भाग अचेतन की स्थिति में इसलिए जाता है कि उस स्थिति में अंतरिक्ष में प्रवाहित रहने वाली विद्युत् धाराओं में से अपने उपयोग का अंश

संग्रह संपादित कर सकने अवसर मिल जाए। 'एरियल' रेडियो तरंगों को पकड़ता है। निद्रावस्था में हमारा अचेतन मस्तिष्क उसी स्थिति का बन जाता है और आकाश से इतनी विद्युतीय खुराक प्राप्त कर लेता है, जिससे शारीरिक और मानसिक क्रिया-कलापों का संचालन ठीक प्रकार संभव हो सके। निद्रा की पूर्ति न होने पर शारीरिक और मानसिक स्थिति में जो गड़बड़ी उत्पन्न होती है, उसे अभीष्ट मात्रा में विद्युतीय खुराक न मिलने को चेतनात्मक 'बुभुक्षा' कहते हैं। इसके बने रहने पर मनुष्य विक्षिप्त या अर्ध-विक्षिप्त बन जाता है। पागलपन छा जाने से पूर्व प्रायः कुछ दिन पहले से अनिद्रा रोग उत्पन्न होता है। अनिद्रा में इस विद्युतीय आहार की ही कमी पड़ती है।

ठीक इससे विपरीत इस शक्ति का विकास होने अर्थात् सूक्ष्म शरीर के बलवान् होने पर वह सारी क्षमताएँ उपार्जित हो सकती हैं, वह ऋतंभरा प्रज्ञा जाग्रत् की जा सकती है, जिससे बिना किसी भौतिक माध्यम के भी व्यक्ति दूरवर्ती वस्तुओं, संबंधियों का ज्ञान, भविष्यवाणी, ऋतुओं का पूर्वानुमान सच-सच कर सके। यह सारे क्रिया-कलाप चेतना के अति गहन स्तर पर संपादित होते हैं। इस बात को तो कोई भी व्यक्ति प्राणायाम के थोड़े समय के अभ्यास से भी ज्ञात कर सकता है कि जैसे-जैसे प्राणायाम का अभ्यास बढ़ता है बुद्धि तीक्ष्ण होती है और गहरी निद्रा आती है। गहन निद्रा का एक गुण शारीरिक हलकापन और प्रसन्नता भी है, दूसरे इसी स्तर पर भविष्यदर्शी स्वप्न भी दिखाई देते हैं।

'नोवोत्सी न्यूज एजेंसी' ने—सोते समय 'अंग्रेजी पढ़ाने का प्रशिक्षण' शीर्षक से समाचार छापा है। समाचार पीछे—पहले शीर्षक पढ़कर ही पाठक चौंक पड़ेंगे। जाग्रत् अवस्था में कई बार पुस्तकें पढ़ते हैं, अध्यापक पाठ याद कराते हैं तो भी विद्यार्थियों को एक ही रोना बना रहता है, पाठ याद नहीं होता। फिर सोते हुए व्यक्ति को पढ़ाना तो असंभव बात है। इसी बात को हम यह कहते हैं कि आत्मा इतनी संवेदनशील है कि अपने सूक्ष्म प्रकाश—शरीर से वह

सोते-जागते किसी भी अवस्था में पढती और ज्ञान-संपादन करती रह सकती है। कोई सामर्थ्यवान व्यक्ति अपने विचार, ज्ञान, प्रज्ञाएँ और संदेश कैसी भी अवस्था में किसी और को भी दे सकता है। तब तो लोग यह बात न मानते, पर मास्को के पास दूबना स्थान पर विज्ञान इस बात को प्रत्यक्ष सिद्ध करने में लगा हुआ है, लगभग एक हजार लोगों को सोते समय गहरी निद्रा में अंग्रेजी सिखाई जा रही है। प्रयोगकर्त्ताओं का कहना है कि ये लोग ४० दिन में सोते-सोते ही अंग्रेजी सीख जायेंगे।

इस प्रणाली के अंतर्गत गहरी नींद में सोने वाले लोग ही भाषा शिक्षण के लिए छाँटे जाते हैं, उन्हें सोते समय भाषा के टेपरिकार्ड सुनाए जाते हैं। वे नींद में ही व्याकरण के नियम और शब्द तथा उनका प्रयोग सीख लेते हैं। अब तक छपे परीक्षण बहुत सफल हुए हैं।

एक ओर यह प्रयोग और दूसरी ओर वैज्ञानिकों की निरंतर की शोध दोनों प्रक्रियाओं ने यह सिद्ध करना प्रारंभ कर दिया है कि स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व और उस सूक्ष्म शरीर में मन आदि संपूर्ण इंद्रियों व चेष्टाओं को पाया जाना असंभव नहीं।

इन घटनाओं के कारण जो अनेक देशों एवं अनेक लोगों के साथ घटी हैं, वैज्ञानिकों का ध्यान भी इस ओर जाने लगा है। विज्ञान भी यह सोचने के लिए विवश हुआ है कि क्या स्थूल शरीर से परे भी मनुष्य का कोई अस्तित्व है, जो उसके संदेशों को सुदूर क्षेत्रों में पहुँचाता है तथा ऐसे-ऐसे काम कर डालता है, जो शरीर द्वारा ही किये जा सकते हैं। बिना किसी स्थूल माध्यम के एक मनुष्य के विचारों और संदेशों को पहुँचाने की इस प्रक्रिया का नाम है, परामानसिक संचार (टैलीपैथी)। रूस के लेनिनग्राड विश्वविद्यालय में फिजियोलॉजी विभाग के अध्यक्ष प्रो० लियोनिद वासिलयेव ने अभी कुछ समय पूर्व एक अनूठा प्रयोग किया। स्मरणीय रहे कि रूस का शासन तंत्र, धर्म, ईश्वर और आत्मतत्त्व की मान्यता को न केवल अनावश्यक मानता है, वरन् उसे अफीम भी बताता रहा है।

फिर भी इस तरह की घटनाओं के कारण वास्तविकता की ओर उसका ध्यान गये बिना नहीं रहा। प्रो० वासिलयेव ने टैलीपैथी द्वारा कई मील दूर स्थित एक प्रयोगशाला में कार्यरत अनुसंधानकर्त्ताओं को सम्मोहित कर दिया और वे लोग जो प्रयोग कर रहे थे, उनसे वह प्रयोग छुड़वाकर किसी दूसरे प्रयोग में लगा दिया। अनुसंधानकर्त्ता वैज्ञानिक अनजाने ही परवश से होकर वासिलयेव के संदेशों का पालन करने लगे और उन्हें यह भान तक नहीं हुआ कि वे क्या कर रहे हैं ? इस प्रयोग के द्वारा प्रो० वासिलयेव इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को केवल अपने संकल्पों के द्वारा ही प्रभावित कर सकता है और उसे अपना आज्ञानुवर्ती बना लेता है। इसके लिए न किसी भौतिक माध्यम की आवश्यकता होती है तथा न ही किसी और साधन की। यहाँ तक कि स्थान की दूरी भी इस प्रक्रिया में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं करती।

मनुष्य एक हँसने, बोलने, सोचने और निर्णय निर्धारण करने वाला कल-कारखाना है। किसी भी कारखाने को चलाने के लिए 'शक्ति' की जरूरत पड़ती है। इसे तेल, भाप, कोयला, बिजली आदि के सहारे ताप रूप में प्राप्त किया जाता है। प्राणियों द्वारा धकेले जाने पर भी यह शक्ति प्राप्त होती है। शरीर का कारखाना भी शक्ति चाहता है। इसके लिए उसे ईश्वर का दिया हुआ स्वसंचालित यंत्र प्राप्त है। अन्न, जल और वायु के ईंधन से यह भट्टी गरम भर होती है, इससे आगे का सब कुछ अपने आप चलता है। पेट में पाचक रासायनिक द्रव्य अन्न से नहीं अपने परंपरागत शक्ति स्रोतों से उत्पन्न होते हैं। आहार तो उन स्रोतों को धकेलने वाली गर्मी पर उत्पन्न करते हैं।

यों चेतना का केंद्र मस्तिष्क माना गया है और उसका पोषक रक्त-संस्थान हृदय कहा है। हृदय को सामग्री पेट से मिलती है। पेट को भरना मुँह का काम है। मुँह के लिए साधन हाथ जुटाते हैं। यह चक्र तो चलता ही है, पर असल में पूरा शरीर ही शक्ति भंडार

है। यह शक्ति असामान्य विद्युत् स्तर की है। असामान्य इस अर्थ में है कि वह भौतिक बिजली की तरह अंधी दौड़ नहीं लगाती वरन् सामने वाले को देखकर ही अपनी गतिविधियाँ फैलाती, सिकोड़ती है।

मानवी विद्युत् हर व्यक्ति की अपनी विशिष्ट संपत्ति है। वह इसी के आधार पर ऐसे अनुदान देता है—ऐसे आदान-प्रदान करता है जो पैसे या किसी वस्तु के आधार पर उपलब्ध नहीं हो सकते। एक व्यक्ति से दूसरा प्रभाव ग्रहण करता है, यह तथ्य सर्वविदित है। संगति की महिमा गाई गई है। कुसंग के दुष्परिणामों और सत्संग के सत्परिणामों को सिद्ध करने वाले उदाहरण हर जगह पाए जाते हैं। यह प्रभाव मात्र वार्तालाप, व्यवहार, लोभ या दबाव से उतना नहीं पड़ता, जितना मनुष्य के शरीर में रहने वाली बिजली के आदान-प्रदान से संभव होता है।

ताप और बिजली का गुण है कि जहाँ अनुकूलता होती है, वह वहाँ अपना विस्तार करती और प्रभाव क्षेत्र बढ़ाती है। प्राणवान् शक्तिशाली व्यक्तित्व अपने से दुर्बलों को प्रभावित करते हैं। यों दुर्बल भी अपनी न्यूनता के कारण समर्थों में सहज करुणा उत्पन्न करते हैं और उन्हें कुछ देने के लिए विवश करते हैं। बच्चे को देखकर माता की छाती से दूध उतरने लगता है—मन हुलसने लगता है। इस प्रकार शक्तिवान् अपने से दुर्बलों को अनुदान देकर घाटे में नहीं रहते। उदारताजन्य आत्म-संतोष से उनकी क्षति-पूर्ति भी हो जाती है। दूध पिलाने में माता को प्रत्यक्षतया घाटा ही है, पर वात्सल्यजन्य तृप्ति से उसकी भी भावनात्मक पूर्ति हो जाती है।

भावोद्रेक प्राणवान् होने का ही लक्षण है। ऐसे व्यक्ति शरीर से दुर्बल भी दिखाई दें, तो भी उनका आत्मबल सब प्रकार से बढ़ा-चढ़ा हुआ होता है और वे उन मोटे ताजे लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक नीरोग और सुखी होते हैं, जो मांस की दृष्टि से तो बहुत भारी होते हैं पर प्राणवान् न होने के कारण न तो नीरोग रह पाते हैं न ही दूसरों के भावात्मक स्पर्श का आनंद ले पाते हैं।

शरीर बल, बुद्धि बल, धन बल, शस्त्र बल, सत्ता बल आदि कितनी ही सामर्थ्यों के लाभ सर्वविदित हैं। यदि आत्मबल की क्षमता एवं उपयोगिता का भी लोगों को पता होता, तो वे जानते कि यह उपलब्धि भी इन सबसे कम नहीं, वरन् कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। आत्मशक्ति न केवल व्यक्तित्व को तेजस्वी बनाती है वरन् बाह्य जगत् में लोगों को प्रभावित करने, उनका सहयोग संपादन करने में समर्थ रहती है। कठिन कामों को सरलतापूर्वक संपन्न करने की विशेषता जिनमें देखी जाती है, उनकी प्रमुख विशेषता यही आंतरिक प्रतिभा होती है, जिसे सर्वतोमुखी सफलताओं का आधार कह सकते हैं। हमारे प्रयत्न यदि उस क्षमता को प्राप्त करने की दिशा में चल पड़ें तो सचमुच हम सच्चे अर्थों में सामर्थ्यवान् कहे जा सकने योग्य बन सकते हैं।

❑ ❑

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस मथुरा (उ. प्र.)

मिशन की पत्रिकाएँ

(१) अखण्ड ज्योति (मासिक)

(धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का विज्ञान एवं तर्क-तथ्य-प्रमाण की कसौटी पर खरा चिंतन)

वार्षिक शुल्क-९६.००, आजीवन शुल्क-१८००.०० रुपया।

अखण्ड ज्योति अंग्रेजी (द्वि-मासिक)

वार्षिक शुल्क-६०.०० रुपया।

पता : अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा-२८१००३

फोन : (०५६५) २४०३९४०

(२) युग निर्माण योजना (मासिक)

(व्यक्ति, परिवार, समाज निर्माण एवं सात आंदोलनों की मार्गदर्शक पत्रिका)

वार्षिक शुल्क-४८.००, आजीवन शुल्क-९००.०० रुपया।

युग शक्ति गायत्री (गुजराती मासिक)

(गायत्री महाविज्ञान, धर्म, अध्यात्म एवं युगानुकूल विचार परिवर्तन का मार्गदर्शन)

वार्षिक शुल्क-७५.००, आजीवन शुल्क-१५००.०० रुपया।

पता : युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

(३) प्रज्ञा अभियान (पाक्षिक)

(युग निर्माण मिशन के क्रियाकलापों एवं मार्गदर्शन का समाचार-पत्र)

वार्षिक शुल्क-२४.०० रुपया।

पाक्षिक वीडियो पत्रिका : युग प्रवाह

(युग निर्माण मिशन के प्रमुख क्रियाकलापों की दृश्य-श्रव्य जानकारी)

वार्षिक शुल्क-१५००.०० रुपया।

पता : शांतिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : ०१३३४-२६०६०२

AV 23

AV23